Con. 3. VII.3.48
350

अंक 7
संख्या 3

शनिवार
6 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव–(*जारी*) 185–256

भारतीय विधान-परिषद्

शनिवार, 6 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई।

उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव

***श्री अरुणचन्द्र गुहा** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम स्वतंत्र भारत के प्रथम विधान को अन्तिम रूप देने के लिये यहां एकत्रित हुये हैं। यह हमारे जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण काल है और इस समय मुझे बरबस अतीत काल का स्मरण हो आता है जब कि हमने अनेक कष्ट झेले और एक संग्राम में संलग्न रहे। हमारे कई साथी हमसे बिछुड़ गये और सारे राष्ट्र ने अनेक कष्ट सहन किये तथा अनेक बलिदान किये। इस समय जब कि हम अपने भावी भाग्य तथा अपने भावी-विधान की रूप-रेखा निश्चित करने के लिये एकत्रित हुये हैं, मैं नतमस्तक होकर उन सब साथियों का स्मरण करता हूं जो इन कई वर्षों के संग्राम में हमसे बिछुड़ गये हैं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजन तथा अन्य कई महानुभावों ने और अन्त में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमारे संग्राम का नेतृत्व किया। हमारे निकटस्थ लोगों में से, विशेषतया बंगाल में, हमारे कुछ ऐसे मित्रों ने भी संग्राम का नेतृत्व किया, जो अन्य लोगों की तुलना में ख्यातनामा तो न थे, परन्तु हमारे लक्ष्य-साधन में वे किसी से पीछे न रहे थे और न अपने देश को बन्धनमुक्त करने की उनकी इच्छा किसी से कम उत्कट तथा प्रबल ही रही थी। मैं उस श्रमिकवर्ग का हूं, जो पिछले चालीस वर्षों से स्वतंत्रता-संग्राम में कटिबद्ध रहा है और इसलिये मुझे कम से कम यतीन्द्रनाथ मुकर्जी, स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती, सूर्यसेन, भगतसिंह इत्यादि के नाम तो स्मरण हो ही आते हैं। यद्यपि वे अन्य लोगों की अपेक्षा प्रख्यात न रहे, परन्तु हमारे लक्ष्य-साधन में उनका भी योग रहा।

अब जहां तक विधान के मसौदे का सम्बन्ध हैं, मेरी यह धारणा है कि मसौदा-समिति अपने निदेश-पदों से परे चली गई है। मेरे विचार से सारे विधान

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अरुणचन्द्र गुहा]

में ऐसी बातें हैं, जो उन मुख्य सिद्धान्तों के परे हैं, जिन्हें कि विधान-परिषद् ने निश्चित किया था। विधान के सारे मसौदे में कहीं भी कांग्रेस के दृष्टिकोण का, गांधीवादी सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण का पता नहीं है। विद्वान डा. अम्बेडकर ने अपने लम्बे और विद्वतापूर्ण भाषण में कहीं भी गांधीजी या कांग्रेस का उल्लेख नहीं किया है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि मेरे विचार से सारे विधान में कांग्रेस के आदर्श की तथा कांग्रेस की विचारधारा की उपेक्षा है। विधान हम केवल इस उद्देश्य से नहीं बना रहे हैं कि एक राजनैतिक ढांचा तैयार किया जाये, या केवल शासन-प्रबंध की व्यवस्था की जाये, बल्कि इसलिये कि वह राष्ट्र के भविष्य के लिये सामाजिक तथा आर्थिक आधार प्रमाणित हो।

मेरे विचार से जहां तक आर्थिक अंग का सम्बन्ध है, हमारे विधान का मसौदा बहुत कुछ मौन ही है। इसमें सम्पत्ति की पवित्रता की रक्षा और उन लोगों के अधिकारों की रक्षा की चिन्ता प्रदर्शित है, जिनको कुछ अधिकार प्राप्त है; परन्तु इसमें उनके सम्बन्ध में मौन ही धारण किया गया है, जो शोषित है और जिनके पास कुछ भी नहीं है। यद्यपि सम्पत्ति की पवित्रता और उसको अक्षुण्णता के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है, परन्तु काम पाने के अधिकार, आजीविका के साधनों को प्राप्त करने के अधिकार और आराम प्राप्त करने के अधिकार इत्यादि के सम्बन्ध में इसमें कुछ भी उल्लेख नहीं है, हालांकि इनको विधान में प्रभावी रूप में सम्मिलित किया जा सकता था।

जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मैं डा. अम्बेडकर जैसे विद्वान प्रोफेसर की विद्वत्ता और योग्यता को स्वीकार करता हूं और मेरी यह धारणा है कि विधान का मसौदा उन्हीं के कार्यकौशल का परिचायक है परन्तु अपने प्रारम्भिक भाषण में उन्होंने एक प्रकार से आध्यात्मिक विषयों को ही उठाया है। उन्होंने एक नये शब्द का प्रयोग किया है। श्रीमान्, मेरे विचार से संसार में कोई भी ऐसा अधिकार नहीं है, जिसे निरपेक्ष कहा जाये। प्रत्येक अधिकार के लिये कुछ सीमा तक कर्त्तव्यपालन आवश्यक है और कोई भी अधिकार बिना कर्त्तव्यपालन के सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये इसी तर्क को आधारभूत बनाना ठीक नहीं कि मूलाधिकार निरपेक्ष नहीं हो सकते। मैं यह जानता हूं कि उन्हें सापेक्ष होना चाहिये, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी परादिक को रखकर मूलाधिकारों का शून्यन कर दिया जाये। मूलाधिकारों के भाग में जिन अधिकारों का भी उल्लेख है उनका किन्हीं प्रावधानों या सहायक खण्डों को स्थान देकर तुरन्त ही शून्यन कर दिया गया है।

अच्छा तो यह होता कि मसौदा समिति इन प्रावधानों को विधान में स्थान ही न देती, इससे कम से कम भविष्य की सरकार को मूलाधिकार निश्चित करने में स्वतंत्रता तो होती। अब चूंकि विधान में इनको स्थान दे दिया गया है, इसलिये केवल यह किया जा सकता है कि विधान का आधार विस्तृत बनाने के लिये उसमें संशोधन किये जाये। इसलिये मैं इस सभा से कहूंगा कि या तो मूलाधिकारों को स्पष्ट रूप में रखा जाये, या इस अध्याय को विधान से निकाल दिया जाये, ताकि भविष्य की सरकार समय की आवश्यकताओं के अनुसार मूलाधिकारों को निश्चित करे और उसे विधान द्वारा अपनी कठिनाइयों को दूर करने के लिये संशोधन करने को आवश्यकता न रहे।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने गांवों के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं हैं। हम वर्षों से कांग्रेस में रहे हैं। हमने ग्राम-पंचायतों को भविष्य के शासन-प्रबन्ध का आधार मानने की सीख पाई है। गांधीजी तथा कांग्रेस का दृष्टिकोण यह रहा है कि भावी भारत का विधान पिरेमिड के आकार का हो और यह आधृत हो, ग्राम-पंचायतों पर। डा. अम्बेडकर के कथनानुसार भारत के विनाश के कारण गांव ही रहे हैं और वे अज्ञान के अंधकार में पड़े रहे हैं। यदि यह सत्य है तो इसके उत्तरदायी हम नगर निवासी ही हैं, जो विदेशी नौकरशाही और विदेशी शासन के प्रकाश में चमकते रहे हैं। हमारे गांवों को भूखा मारा गया, विदेशी सरकार ने जान-बूझकर हमारे गांवों का गला घोटा और इस अपावन कार्य में नगर निवासी उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। मेरे विचार से स्वतंत्र भावी भारत का प्रथम कार्य गांवों का पुनरुत्थान ही होना चाहिये। श्रीमान्, मैं आपसे कह चुका हूं कि गांधीवादी तथा कांग्रेसी विचारधारा से हमने यह शिक्षा ग्रहण की है कि भारत का भावी विधान एक पिरैडिम के आकार का हो, जिसकी आधारशिला हो, ग्राम-पंचायतें।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि हमें एक सशक्त केन्द्र की आवश्यकता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके अंग अशक्त हों। बिना सशक्त अंगों के हमारा केन्द्र भी सशक्त नहीं हो सकता। यदि हम सारे ढांचे को ग्राम-पंचायतों, लोगों के सहर्ष सहयोग की आधार-शिला पर खड़ा करेंगे, तो मेरे विचार से केन्द्र स्वतः सशक्त हो जायेगा। मैं इस सभा से अब भी प्रार्थना करता हूं कि कुछ ऐसे खण्ड सम्मिलित कर लिये जायें, जिनसे ग्राम-पंचायतें देश के भावी शासन में प्रभावपूर्ण भाग ले सकें।

[श्री अरुणचन्द्र गुहा]

डा. अम्बेडकर ने हमारे सम्मुख यह कल्पना उपस्थित की है कि उन्होंने प्रान्तों के आधार पर, राजनैतिक इकाइयों के आधार पर और व्यक्ति के आधार पर विधान-निर्माण किया है। शासन-तंत्र का वास्तविक आधार ग्राम ही होना चाहिये। व्यक्ति सारे विधान का प्राण है, परन्तु ग्राम उसके ढांचे का आधार होना चाहिये।

अब श्रीमान्, मैं भाषा के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। विधान के मसौदे में यह कहा गया है कि इस सभा में हिन्दी और अंग्रेजी का स्वतंत्रता से उपयोग किया जाये और अन्य भाषाओं का उपयोग उसी दशा में किया जाये, जब कि वक्ता इन भाषाओं में से किसी में अपने विचार उचित रूप से व्यक्त करने में असमर्थ हो। मेरे विचार से श्रीमान्, रूस के विधान की तरह हमारे विधान में भी यह व्यवस्था होनी चाहिये कि इस सभा में भारत की आठ या नौ भाषाओं का स्वतंत्रता से उपयोग किया जाये। रूसी विधान में संख्या के बाहुल्य के कारण रूसी भाषा का ही प्राधान्य है और इसी प्रकार यहां भी हिन्दी का ही प्राधान्य होगा। हम में से किसी को भी किंचितमात्र भी संदेह नहीं है कि भारत की राष्ट्रभाषा, सरकारी भाषा का स्थान हिन्दी ही ग्रहण करेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस सभा में उन भाषाओं को बोलने की आज्ञा, जिनका कि ऊंचा साहित्य है और ऊंची परम्परा है, तब तक न दी जायेगी, जब तक कि वक्ता यह घोषित न करे कि वह अंग्रेजी या हिन्दी में बोलने में असमर्थ है। मैं यह प्रार्थना करता हूं कि इस सभा में अन्य भाषाओं को भी स्वतंत्रता से बोलने दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** इसके पूर्व मैं दूसरे सदस्य महोदय से सभा के सम्मुख बोलने के लिये कहूं, मेरे पास चालीस पर्चियां ऐसे सदस्यों से आई हैं, जो बोलना चाहते हैं। यह विषय इतना तात्कालिक और महत्त्वपूर्ण है कि मेरी तो यह इच्छा है कि विधान के मसौदे पर मत प्रकट करने का अवसर प्रत्येक सदस्य को दिया जाये। इसलिये क्या मैं वक्ताओं से यह अनुरोध कर सकता हूं कि मैंने दस मिनट की जो काल-सीमा निश्चित की है, उसके बाहर वे न जायें?

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यह विधान का मसौदा जिसे कार्यवाहक माननीय डा. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, एक वृहत् प्रलेख है। उन्होंने तथा उनके साथियों ने इसे तैयार करने में वास्तव में बहुत कष्ट उठाया होगा। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपने भाषण में बताया कि समिति से 5 या 6 सदस्यों के निकल जाने से और रिक्त स्थानों की पूर्ति न होने से

माननीय डा. अम्बेडकर को किस कठिनाई का सामना करना पड़ा। मैं इस अधिवेशन में इसी आशा से बराबर उपस्थित रहा हूं कि यह विधान ऐसा होगा, जिसमें उन लोगों की आकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति होगी, जिन्होंने तीस वर्ष तक स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और जो स्वर्गीय महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हुये। श्रीमान्, प्रस्तावना देखकर मुझे यही आशा थी कि सब कुछ यथाक्रम ठीक चलेगा और ऐसा विधान बनेगा, जिससे हमारे करोड़ों लोगों को खाना और कपड़ा मिलेगा और इस देश के सभी लोगों को शिक्षा तथा सुरक्षा उपलब्ध होगी। परन्तु श्रीमान्, मुझे तथा मेरी विचारधारा के कुछ अन्य लोगों को यह देख कर अत्यन्त निराशा हुई कि इस मसौदे में एक विषय के उपरान्त दूसरा विषय इस प्रकार उठाया गया है कि हमारे लिये यह समझना बहुत ही कठिन हो गया है कि इसमें हमारी स्थिति क्या है, हमारे देश की स्थिति क्या है और लोगों की स्थिति क्या है। जब यह विधान कानून का रूप धारण करेगा, तो इससे उनको क्या फायदा होगा? जब श्रीमान्, जब विधान का मसौदा तैयार किया जाता है, तो उन लोगों से, जो इसे तैयार करते हैं, क्या आशा की जाती है? विधान-परिषद् के सदस्यों से, जो उसे स्वीकार करते हैं, क्या आशा की जाती है? देश में कैसी दशा है? देश में कैसी परिस्थिति है? क्या हम देश की कठिनाइयों को दूर करने के लिये जो कुछ भी आवश्यक है, उसे कर रहे हैं? इसी उद्देश्य से मैं उन सभी सदस्यों के भाषण सुनता रहा हूं, जो इस विधान के सम्बन्ध में स्थिति का स्पष्टीकरण करने में अपना समय लगाते रहे हैं। मैं उन सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूं, जो यह नहीं भूले हैं कि इस देश में स्वतंत्रता की लड़ाई किस प्रकार लड़ी गई और किस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त की गई। जहां तक इस विधान का मसौदा तैयार करने का सम्बन्ध है, माननीय डा. अम्बेडकर के प्रति सब प्रकार से आदर भाव रखते हुये भी मुझे यह कहना ही चाहिये कि वे अपने को उन लोगों की स्थिति में नहीं रख सके हैं, जो तीस वर्ष तक इस देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे हैं। उन्होंने एक ही वाक्य लिखकर ग्राम-पंचायत-प्रणाली को निन्दित घोषित कर दिया है। उन्होंने अंग्रेजों के पुराने समय के एक बड़े आदमी श्री मेटकाफ की और ग्राम-पंचायतों के उनके इस वर्णन की ओर संकेत किया है कि चाहे चोटी पर सरकार का जो कुछ भी हाल रहा हो और चाहे जो कोई आया और गया, उनको इससे कुछ मतलब नहीं रहा और वे स्थित रही और चलती रही। डा. अम्बेडकर को इस विषय पर इस प्रकार विचार न करना चाहिये था। निस्सन्देह जब इस देश में बाहर से आये हुये कई शासकों के अत्याचार से ग्राम-पंचायतें निष्प्राण हो गयी थी, तो हम इस गति को प्राप्त हो गये थे। किन्तु उनका अनेक

[श्री टी. प्रकाशम्]

प्रकार से दमन होते हुये भी वे जीवित रहीं। मेटकाफ दुनिया को और हमें, जो इसकी उपेक्षा कर रहे हैं, यही बताना चाहते थे। इसलिये इस आधार पर ग्राम-पंचायतों की निन्दा नहीं की जा सकती। आज मैं एक क्षण के लिये भी इसका समर्थन नहीं कर सकता कि ग्राम-पंचायतों का वह रूप हो, जिसका वर्णन मेटकाफ ने अपने समय की स्थिति के अनुसार किया है। ग्राम-पंचायतें समयोचित होनी चाहिये और उनमें ग्रामवासियों को वास्तविक शक्ति प्रदान करने, उन पर शासन करने, धन प्राप्त करने और उसे व्यय करने की क्षमता होनी चाहिये। मैं यह जानना चाहता हूं कि विधान के इस मसौदे के अंतर्गत यह कैसी सरकार बनाई जा रही है! यह किसके लाभ के लिये है? क्या यह थोड़े से लोगों के लाभ के लिये है, या उन करोड़ों लोगों के लाभ के लिये, जो कर देते हैं? चाहे उनके पास शक्ति हो या न हो वे इस देश में प्रयुक्त उस दूषित प्रणाली के अधीन कर तो देते ही हैं जिसके भार से हम पिछले डेढ़ सौ वर्षों से कराहते रहे हैं और जिससे मुक्ति पाने के लिये हम यथाशक्ति सचेष्ट रहे हैं। अंग्रेजों ने केन्द्र में और प्रान्तों में इस प्रकार की प्रणाली प्रयुक्त की कि कृषकों और श्रमिकों तथा अन्य लोगों को इसलिये कोई न कोई कर देना ही होता है कि सरकार सेंट जार्ज के किले से या दूसरे किले से या दिल्ली के इस केन्द्र से या अन्य जगहों से अपना शासन-कार्य चलाती रहे। उन करोड़ों लोगों की क्या दशा होती है, जो कर देते हैं? ब्रिटिश-प्रणाली के अधीन रुपया उन लोगों के पास चला जाता है, जिनको यहां धीरे-धीरे स्थापित किया गया है और रुपया वहां पहुंचने पर उन लोगों द्वारा खर्च कर दिया जाता है। करदाता नहीं जानता कि रुपया कैसे खर्च होता है और वह सदा इस बारे में धोखे में रखा जाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी वह नहीं जानता कि कोई शासक भी है या नहीं, क्योंकि हम पुरानी प्रणाली को ही चिरस्थायी कर रहे हैं और हमारे सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि हम सम्राट जार्ज के नाम पर शासन कर रहे हैं। गवर्नर-जनरल को ब्रिटिश-मंत्रिमंडल नियुक्त करता है और हमारे नोटों पर सम्राट जार्ज की मुहर लगी रहती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के दो वर्ष बाद भी हमारी यह दशा है। इसलिये यह न्यायोचित ही होगा कि इस देश के लोगों द्वारा निर्वाचित यह विधान-परिषद् डा. अम्बेडकर के इस विधान के मसौदे को इस प्रकार संशोधित करने की चिन्ता करे, जिससे इस विधान से जनसाधारण को वास्तविक लाभ हो, क्योंकि उन्हीं के लिये हमारे उस परम मित्र ने लड़ाइयां लड़ीं, जो हमारे बीच से विदा हो गया है और हमें इस कार्यभार को सम्भालने के लिये यहां छोड़ गया है। जब वह जीवित था, तो उसकी प्रणाली को तथा

उसकी योजनाओं को हमारा या देश के करोड़ों लोगों का पूर्ण हार्दिक समर्थन प्राप्त न हुआ। यदि यह होता तो, जैसा कि उसने कहा था, हमें बारह महीने में ही स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती। प्रबल कल्पना से विभूषित वह पुरुष हमारे साथ रहा और चाहे हमने उसे कितना ही धोखा दिया हो, उसने हमें शिक्षा दी, हमें शांत रखा, सभी संग्राम लड़े, सफलता प्राप्त की और भावी शासन के लिये हमें एक योजना दी। करोड़ों लोगों के हृदयों को प्रेरित करने वाले इस पुरुष ने अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुये लोगों को ऊंचा उठाया और उन्हें यह समझाया कि ''आप सब मनुष्य हैं और आप सब में वैसा ही आत्मबल है जैसा मुझमें है। यदि आप अपने को शिक्षित बनायें और मेरे कार्यक्रम को व्यवहार में लाये, तो आप सारा कार्य सम्पन्न कर लेंगे और स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव करने में समर्थ होंगे।'' श्रीमान्, पचास वर्ष से कुछ अधिक वर्ष पूर्व इंग्लैंड में महामना लाला लाजपतराय से मेरी भी बातचीत हुई थी। वे स्वतंत्रता-संग्राम के सर्वप्रथम त्यागियों में से थे और उन्होंने मुझसे कहा था, ''देखिये तो इन लोगों का कैसा संगठन और अनुशासन है और ये कैसे अपना कार्य करते हैं। क्या हम इन अंग्रेजों को अपने देश से निकाल कर स्वतंत्रता प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं?'' जब मैंने उस देश में कदम रखा, तो मेरी भी यही धारणा थी। इस परिस्थिति में गांधी जी एक द्रष्टा के रूप में आये और उन्होंने हमें ऊंचा उठाया। मैंने और यहां उपस्थित मेरे कई मित्रों ने उनके आन्दोलन में भाग लिया और पिछले तीस वर्षों तक हम संग्राम करते रहे। जिस व्यवस्था की स्थापना हम चाहते थे वह तो अभी तक स्थापित नहीं हुई है। ब्रिटिश-प्रणाली ने हमको डूबा दिया था, देश को कुचल दिया था और लोगों को असहाय बना दिया था। पूंजीवादी प्रणाली से मुक्ति पाने के लिये उन्होंने 'रचनात्मक कार्यक्रम को प्रयुक्त किया, ताकि प्रत्येक नर और नारी अपने कर्त्तव्य का पालन कर सके और अपने को त्याग करने के तथा अन्त में अंग्रेजों को निकाल देने के योग्य बना सके। वे सफल हुये और लोग भी सफल हुये। जन-साधारण इसलिये धन्यवाद के पात्र हैं कि वे चाहे अग्नि-परीक्षा रही हो, या जल-परीक्षा, उसमें प्रविष्ट हुये। हमने गांधी जी के समाजवादी आधार पर विधान-निर्माण नहीं किया है। उन्होंने भाषाओं के आधार पर सारे देश को बांटा और कांग्रेस के लिये विधान बनाकर उसे 30 वर्ष तक चलाया, यही कारण था कि हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। उस समाजवादी आधार को हटाकर एक पूंजीवादी आधार को प्रस्तुत किया जा रहा है। इस विधान का अन्तिम फल यही होगा। आज हमारे सामने खाने और कपड़े की विकट समस्यायें उपस्थित हैं। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या इस विधान से इनमें से कोई समस्या हल हो सकती है? मेरे विचार से जब तक संसार में पूंजीवादी प्रणाली स्थित है, तब तक यह सम्भव नहीं है। आप चाहे जितने

[श्री टी. प्रकाशम्]

प्रस्ताव पास करें और चाहे जितनी समितियां बनायें, परन्तु वे मुद्रास्फीति की समस्या को हल नहीं कर सकती। इसलिये यह आवश्यक है कि इस विधान का इस प्रकार संशोधन हो कि पूंजीवादी धन-प्रणाली को स्थान न मिले, किन्तु हमारी अपनी समाजवादी प्रणाली प्रयुक्त हो। मेरा तात्पर्य रूसी प्रणाली से नहीं है। हमारी अपनी प्रणाली थी और हमारी वह प्रणाली भी है, जिसे महात्मा गांधी ने प्रयुक्त किया और तीस वर्ष तक सफलता से चलाया। इस प्रकार का विधान का मसौदा मेरी समझ के बाहर है। मैं डा. अम्बेडकर से अपील करता हूं... मैं केवल उन्हीं को दोष नहीं देता हूं। डा. अम्बेडकर तीस वर्ष तक रणक्षेत्र में नहीं रहे, उन्होंने किसी प्रकार भी इसका महत्त्व नहीं समझा। वे अपने जीवनभर गांधी तथा कांग्रेस की सारी प्रणाली और कार्यक्रम पर आघात करते रहे...

***उपाध्यक्षः** सावधान, सावधान!

***श्री टी. प्रकाशम्:** यदि मुझे इतना न कहना चाहिये, तो मेरी समझ में नहीं आता कि... मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। विधान का मसौदा एक गलत दिशा की ओर चला गया है और उसमें संशोधन करने की बहुत आवश्यकता है। श्रीमान्, मैं इस सभा के सदस्यों से व आपसे यह कहूंगा कि यदि यह इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया और यदि वही पूंजीवादी धन-प्रणाली स्वीकार की गई, तो हमें याद रखना चाहिये कि अन्य देश किस दशा को प्राप्त हुये। संसार के पूंजीवादी देशों ने जिस धन-प्रणाली को स्वीकार किया, वह एक बार नहीं बल्कि दो बार विफल हो चुकी है। आपने देखा कि पहले युद्ध के उपरान्त एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई, जिसे संसार का प्रथम आर्थिक संकट कहा जाता है। जर्मनी का दिवाला निकल चुका था। इंग्लैंड का भी बहुत कुछ दिवाला निकल चुका था। उसके पौंड की कीमतें विदेशी बाजार में केवल सात शिलिंग रह गई थी। यदि हमारे यहां के अग्रगण्य वणिकों ने, पूंजीपतियों ने यहां से सोने का निर्यात न किया होता, तो इंग्लैंड का भी पूरी तौर से दिवाला निकल गया होता। यह पहली बात है। इसके बाद संसार को एक दूसरे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। आपको स्मरण होगा कि उस समय इंग्लैंड के चांसलर आफ एक्सचेकर डाल्टन ने क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि परिवर्तित परिस्थिति में डालर एक्सचेंज व्यवसाय से इंग्लैंड को प्रतिदिन एक करोड़ तीस लाख डालर की क्षति उठानी पड़ रही थी और सारी व्यवस्था नष्ट होने को थी। यदि मार्शल-सहायता-प्रणाली से स्थिति सम्भाल न ली गई होती, तो आज उस देश की बड़ी दुर्दशा हो गई होती। आज इंग्लैंड इस प्रकार की कठिन परिस्थिति में है। इसलिये मैं इस सभा के माननीय

सदस्यों को चेतावनी देता हूं कि संशोधनों के लिये जो समय निश्चित किया जाये उस समय बिना इस विधान के मसौदे को संशोधन किये हुये इसे स्वीकार कर लेने से देश इसी प्रकार के आर्थिक संकट में पड़ जायेगा। मैं यहां इसकी प्रतीक्षा करता रहा कि इन बातों के सम्बन्ध में प्रकाश मिलता है या नहीं। कभी मैं, उस धन-प्रणाली के संबंध में जो स्वीकार की जानी चाहिये, अर्थ-मंत्री महोदय से सम्पर्क स्थापित करना चाहता हूं; परन्तु वे यहां उपस्थित नहीं रहते। (*इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने फिर घण्टी बजाई।*) श्रीमान्, अच्छा मैं समाप्त करता हूं।

, ***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। हम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहे हैं और हम में से किसी के लिये भी यह बहुत कठिन होगा कि वह दस मिनट के अन्दर अपने विचार व्यक्त कर ले। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपने नियम को सख्ती से न बरतें और हमें अपने विचारों को पूर्ण रूप से और स्वतंत्रता से प्रकट करने दें। पहले हमने जब माननीय अध्यक्ष महोदय से इस प्रकार की प्रार्थना की थी, तो उन्होंने हमको आश्वासन दिया था कि हमें बहस के लिये काफी और पूरा समय मिलेगा। मुझे आशा है कि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्ष:** वास्तव में कल प्रत्येक सदस्य दस मिनट से अधिक बोला। मैं सभा के हाथों में हूं। जितना भी समय आप चाहे, मैं दे सकता हूं परन्तु आखिर कोई निश्चित नियम तो होना ही चाहिये।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अभी आपने कहा कि कल प्रत्येक सदस्य दस मिनट से अधिक बोला। एक अनुभवी वक्ता होने के नाते मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी वक्ता के लिये यह कितना कष्टकर होता है कि उसे घंटी बजाकर यह स्मरण कराया जाये कि उसका समय समाप्त हो गया है। मेरे मित्र ने जो यह कहा है कि दस मिनट के अन्दर किसी के लिये भी किसी बात की संतोषजनक व्याख्या करना असम्भव है, इसमें काफी वजन है। यह आवश्यक है कि समय कम से कम बीस मिनट रखा जाये और यदि आवश्यक हो तो सामान्य बहस के लिये एक दिन और रखा जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप सामान्य बहस के लिये एक दिन और रखने को तैयार हैं?

***कई माननीय सदस्य:** जी हां।

***एक माननीय सदस्य:** उनके सम्बन्ध में क्या होगा, जो बोल चुके हैं और जिन्होंने केवल दस मिनट लिये?

***डा. जोसेफ आलबन डी'सूजा** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस महान् राष्ट्र के सहस्त्रों वर्ष प्राचीन इतिहास में कभी भी इसकी इतनी आवश्यकता न थी और न शायद कभी होगी, जितनी कि इस महत्त्वपूर्ण काल में है जबकि यह आदरणीय सभा स्वतंत्र सम्पूर्ण सत्ताधारी प्रजातंत्रात्मक भारतीय गणराज्य के विधान के मसौदे के प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक खण्ड पर विचार करेगी, कि हर किसी को उसका यथोचित भाग देने के लिये हम सच्चाई व शांति से अपने हृदयों की ओर अन्तर्दृष्ट हों, हम भ्रातृभाव से परिपूर्ण सहयोग और सहकारिता की प्रबल भावना दिखायें, जिससे हमारे अनेक प्रकार के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में शांति, सामंजस्य तथा सद्भाव का प्रादुर्भाव हो, हमारी कल्पना पर्याप्त रूप से विस्तृत हो, ताकि इस विधान के सम्बन्ध में जो पेचीदे और कठिन प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हैं, उन पर हम मुख्यत: समस्त देश की सम्पन्नता और समुन्नति के व्यापक दृष्टिकोण से विचार कर सकें और साथ ही अपने पड़ौसी को अपने समान प्यार करने के सर्वविदित सिद्धान्त का पर्याप्त रूप से तथा उदारता से लोकहितार्थ प्रदर्शन करें, ताकि राष्ट्र के उच्च हितों के साधन में संकुचित भावना प्रधान विचार बाधक न हों और न उनका राष्ट्र की आधारभूत नीति सम्बन्धी निर्णयों पर ही कोई प्रभाव पड़े।

कई सदस्यों ने, लगभग प्रत्येक सदस्य ने जो मुझसे पूर्व बोल चुका है, यह स्वीकार किया है कि विधान का मसौदा एक सर्वोत्कृष्ट रचना है। मैं तो कहूंगा कि डा. अम्बेडकर और मसौदा-समिति ने कई वर्षों के अथक परिश्रम के बाद जो विधान उपस्थित किया है, वह चिरस्मरणीय है और यह कार्य निश्चित रूप से विशेषज्ञों का कार्य कहा जा सकता है और आरम्भ से अन्त तक इससे तुलनात्मक तथा विशिष्ट कार्यकौशल का परिचय मिलता है।

इस आदरणीय सभा में जिस विधान को माननीय प्रस्तावक महोदय ने एक वृहत् ग्रंथ कहकर लक्षित किया है और यह भी कहा है कि संसार के सभी विधानों से इसका आकार-प्रकार वृहत् है, क्योंकि इसमें 315 अनुच्छेद हैं और आठ परिशिष्ट हैं। उसकी परीक्षा किस दृष्टिकोण से होनी चाहिये, इसके सम्बन्ध में इन सामान्य बातों को कहकर और इस सभा के माननीय सदस्यों को यह बताकर कि इस आधारभूत ग्रंथ पर किस दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिये, मैं इस विधान

में उल्लिखित कुछ विषयों की ओर संकेत करने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूं। अल्पसंख्यकों के अधिकार सम्बन्धी परामर्श-समिति का सदस्य होने के नाते न्याय मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मेरी विशेषरूप से दिलचस्पी है और रही है। इस समय मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि मैं परामर्श-समिति के सभापति माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रति बहुसंख्यक दल ने जिस संतोषजनक और न्यायोचित ढंग से अल्पसंख्यकों को ये अधिकार प्रदान किये हैं, उसके लिये सर्वोत्कृष्ट रूप में अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं। श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि इस संतोषजनक तथा न्यायोचित व्यवस्था का यह प्रतिफल होगा कि सुख हो चाहे दुख, अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों का अन्त तक साथ नहीं छोड़ेंगे। श्रीमान्, मेरी यह प्रबल आशा है कि विधान के मसौदे में जिस रूप में इन अधिकारों को रखा गया है, उसमें इस आदरणीय सभा के विचार-विमर्श के फलस्वरूप कोई परिवर्तन न होने दिया जायेगा।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में बोलते हुये मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से एक नम्र निवेदन करना चाहता हूं। वह विधान के मसौदे के 299वें अनुच्छेद के सम्बन्ध में है, जिसमें कहा गया है:

> ''संघ में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष पदधारी होगा... प्रत्येक राज्य में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष पदधारी होगा, जिसको उस राज्य का शासक नियुक्त करेगा।''

श्रीमान्, संघ का यह विशेष पदधारी स्वभावत: केन्द्रीय विधान-मण्डल के अधीन रखा गया है, परन्तु इस आदरणीय सभा से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रावधान को कुछ इस प्रकार संशोधित किया जाये कि जैसे केन्द्र में इस विशेष पदधारी की नियुक्ति प्रधान करेंगे, उसी प्रकार नौ राज्यों में भी उनकी नियुक्ति प्रधान ही करें। राज्यों के इन पदधारियों को किसी न किसी प्रकार केन्द्र के प्रति उत्तरदायी बनाना चाहिये। यदि ऐसा किया गया, तो ये पदधारी राज्यों में बिना भय या पक्षपात के कार्य करेंगे। मेरा यही निवेदन है और मैं आशा करता हूं कि राज्यों के विशेष पदधारियों को केन्द्र के प्रति उत्तरदायी बनाने के निमित्त यदि सम्भव होगा, तो संशोधन किया जायेगा।

मैं एक और निवेदन करना चाहता हूं और वह भी अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 25 में दिये हुये वैधानिक उपचारों के बारे में है। साधारणतया, जैसी कि विधान के मसौदे में प्रावधान है, ऐसे मामलों पर केवल

[डा. जोसेफ आलबन डी'सौजा]

सर्वोच्च न्यायालय विचार करेगी। परन्तु श्रीमान्, मैं इस आदरणीय सभा को यह बताना चाहता हूं कि अधिकतर मामलों का सम्बन्ध हमारे नागरिकों के, हमारे जनसाधारण के गरीब वर्गों ही से होगा। उपखण्ड (3) में यह प्रावधान है कि पार्लियामेंट कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को भी ऐसे मामलों पर विचार करने का अधिकार दे सकती है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि अन्य न्यायालयों को कानून द्वारा अधिकार देने की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा अच्छा तो यह होगा कि यह व्यवस्था यहीं कर दी जाये। यदि इस प्रकार का कोई संशोधन किया जाये और पार्लियामेंट के उपायों या कानूनों की प्रतीक्षा न की जाये, तो इससे गरीब वर्गों के लोगों की और विशेषतया जनसाधारण की स्थिति में सुधार हो सकता है।

श्रीमान्, जो अन्तिम बात मैं कहना चाहता हूं, वह उन सुझावों के सम्बन्ध में है, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों से सम्बन्धित विशेष पदधारियों के केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होने के सम्बन्ध में मैंने अभी किये हैं। मुझे विश्वास है कि यह आदरणीय सभा यह समझ गई है कि मैं अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में हूं। जितना ही अधिक केन्द्र शक्तिशाली होगा, उतने ही सुचारू रूप से राज्य की सेवाओं और राज्य के कार्य का एकीकरण हो सकेगा। भारत का इतिहास इसका प्रमाण है कि केन्द्र के अशक्त होने के कारण ही साम्राज्य तथा राजवंश विनष्ट हो गये। केन्द्र को सशक्त बनाने के प्रश्न को सबसे महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिये और यदि हम शताब्दियों के विदेशी प्रभुत्व के उपरान्त प्राप्त स्वतंत्रता का संरक्षण चाहते हैं, तो हमें यही करना होगा। सम्पूर्ण संघ के एकीकरण के लिये शक्तिशाली केन्द्र परमावश्यक है और मुझे आशा है कि जैसा कि उपस्थित विधान में सन्निहित है, वह तीन विषयों के साथ—अर्थात् संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती विषयों के साथ और केन्द्र को प्रदत्त अवशिष्ट अधिकारों के साथ स्वीकार किया जायेगा।

श्रीमान्, इस विधान के मसौदे पर मुझे अपने विचार व्यक्त करने का अवसर देने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम अपने कार्य के सबसे अन्तिम तथा दुर्गम सोपान पर पहुंच गये हैं। यद्यपि मुझे इसकी चिन्ता है कि हमें इस कार्य को यथासम्भव शीघ्रता से समाप्त कर देना चाहिये, परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि हम भारत का विधान बना रहे हैं और यह

न होना चाहिये कि केवल शीघ्रता के निमित्त हम इन प्रावधानों पर यथोचित गम्भीरतापूर्ण विचार-विमर्श न कर सके; क्योंकि इसका देश के भविष्य तथा उसके हितसाधन पर प्रभाव पड़ सकता है।

मसौदा-समिति के सदस्यों ने एक सुन्दर कार्य किया है, परन्तु वह दो प्रकार की आलोचना से मुक्त नहीं है। मेरे विचार से समिति ने अवैध रूप से विधान-समिति का रूप धारण कर लिया। इस परिषद् की खुली सभा में जो महत्त्वपूर्ण प्रावधान स्वीकार किये गये थे, उनको बदल डालने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली। इस सभा द्वारा नियुक्त समितियों की रिपोर्टों को अस्वीकार करने की अधिकारिणी भी उसने अपने को समझ लिया। (वाह, वाह) मैं उस समिति का सदस्य था, जिसने दिल्ली और केन्द्र शासित प्रान्तों के सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार की थी। यह सच है कि उस समिति की रिपोर्ट पर इस सभा में विचार नहीं किया गया और कोई निर्णय नहीं किये गये। परन्तु मेरी समझ से मसौदा-समिति के सदस्यों के विचारों के स्थान में उसकी सिफारिशों को विधान में समाविष्ट करना अधिक अच्छा होता। (वाह, वाह) श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं कहूंगा और मैं इसे सभा पर छोड़ता हूं कि जब इस विषय सम्बन्धी खण्ड उठाये जायें, तो वह विचार करे कि कौन सुझाव स्वीकार्य है। परन्तु आज मैं केवल उन आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बोलूंगा, जिनकी ओर प्रस्तावक महोदय ने संकेत किया है।

डा. अम्बेडकर ने विधान के उन अंगों पर यथोचित रूप से जोर दिया है, जो उसके अपरिवर्तनशीलता या लचीलेपन से सम्बन्ध रखते हैं और उनका यह दावा है कि भारतीय विधान का मसौदा अमेरिका के विधान से या अन्य संघीय विधानों से अधिक लचीला है। परन्तु क्या मैं यह कहने की धृष्टता करूं कि लचीलापन हमेशा लाभप्रद नहीं होता है? किसी भी देश का विधान मनुष्य के ढांचे के समान होता है। विधान को बनाये रखने के लिये कुछ हिस्सों का कड़ा और कुछ हिस्सों का लचीला होना आवश्यक है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप उन हिस्सों पर ध्यान दें, जिनका कड़ा होना आवश्यक है। मेरे विचार से आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ढिलाव दिखाना खतरे से खाली नहीं है। हमारे हृदय में यह विचार उठ सकता है कि समय की आवश्यकताओं को देखकर उनमें ढील देना बुद्धिमानी ही होगी, परन्तु यदि एक बार भी आप आधारभूत सिद्धान्तों में ढील देंगे, तो वह विधान में एक रोग का रूप धारण कर लेगी जो अन्ततोगत्वा उसको विनष्ट कर देगी।

[श्री के. सन्तानम्]

श्रीमान्, वे आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं, जिनको कि विधान में समाविष्ट करने की चेष्टा की जा रही है? पहले एकात्मक, समतायुक्त और असाम्प्रदायिक नागरिकता की व्यवस्था है। दूसरे प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था है। तीसरे एक संघ की और चौथे उत्तरदायी अधिशासन की व्यवस्था है। मेरा यह सुझाव है, हम इस विधान के प्रावधानों पर इस दृष्टि से विचार करें कि इन सिद्धान्तों में से प्रत्येक सिद्धान्त उसमें पूर्ण रूप से सन्निहित हैं, या नहीं।

उदाहरण के लिये एकात्मक, समतायुक्त और असाम्प्रदायिक नागरिकता के सिद्धान्त को ही लीजिये। यह कहा जाता है कि मूलाधिकारों से इनकी रक्षा होती है। परन्तु डा. अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रत्येक मूलाधिकार के सम्बन्ध में बड़े-बड़े अपवाद है। उन्होंने कहा कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी सर्वोच्च न्यायालय को इन मूलाधिकारों को संशोधित करना पड़ा। यह सच है। परन्तु हमारे सर्वोच्च न्यायालय को भी इन मूलाधिकारों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने तो यह किया कि राज्यविशेष की आवश्यकताओं को देखकर मूलाधिकारों के विस्तार को सीमित कर दिया, परन्तु भारत के संघीय न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्त्तव्य हो जायेगा कि वह प्रतिबंधों के विस्तार को सीमित करें, क्योंकि प्रतिबंधों की विस्तृत व्याख्या करने से तो हमें मूलाधिकारों के अध्याय को ही निकाल देना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से हमें इन प्रावधानों की परीक्षा करनी चाहिये और प्रतिबंधों की यथासम्भव संक्षिप्त परिभाषा करनी चाहिये, क्योंकि वर्तमान काल में जब आये दिन आकस्मिक परिस्थितियां उत्पन्न होती रहती है और आकस्मिक शक्ति ग्रहण करनी होती है, यह आवश्यक है कि विधान कम से कम लोगों के कुछ नागरिक अधिकारों की रक्षा करे। स्थानीय विधान-मण्डलों या केन्द्रीय विधान मण्डलों के लिये यह आसान न होना चाहिये कि उनका पूर्णतया हरण करें।

श्रीमान्, दूसरा प्रश्न प्रौढ़ मताधिकार का है। मैं यह चाहता हूं कि हम इसे सिद्धान्त के रूप में मान लें कि केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह सारे देश के प्रौढ़ मताधिकार सम्बन्धी रजिस्टरों और तालिकाओं को तैयार करे, क्योंकि हम जानते हैं कि प्रान्तीय और स्थानीय सरकारें, जो इन तालिकाओं को भाषा सम्बन्धी या असाम्प्रदायिक विचारों के आधार पर संशोधित करती हैं, सम्भवत: इनको सावधानी से तैयार करने में कुछ ढील-ढिलाव दिखायें। (वाह, वाह) कुछ

दोष हो सकते हैं। उदाहरणार्थ मद्रास में एक बार मतदाताओं का रजिस्टर तैयार करने का प्रयत्न किया गया। यह सारा काम एक या दो ही दिन में पूरा हो गया और ऐसी शिकायतें हैं कि उस नगर के 50 प्रतिशत मतदाता छोड़ दिये गये हैं। कम से कम यहां उसके पीछे कोई उद्देश्य नहीं था। परन्तु इन रजिस्टरों को तैयार करने में शासन प्रबंध योग्यता और पूर्णता से नहीं किया गया। श्रीमान्, हम समझते हैं कि हम इस सम्बन्ध में सचेत होकर या सावधानी से काम नहीं ले सके। हम यह चाहते हैं कि भारत का प्रत्येक नागरिक इस रजिस्टर में स्वत: सम्मिलित हो जाये और तालिका में सम्मिलित होने के उसके अधिकार का विधान में हर प्रकार संरक्षण हो। इसलिये मैं सभा के सम्मुख यह सुझाव उपस्थित करता हूं कि वह केन्द्रीय सरकार को ही इस रजिस्टर को तैयार करने व उसकी रक्षा करने का जिम्मेदार ठहराने के औचित्य पर विचार करे। इस समय केन्द्रीय सरकार भारत में दस वर्ष के उपरान्त जनगणना करने के लिये जिम्मेदार है। मेरे विचार से हम एक ऐसी स्थायी व्यवस्था कर सकते हैं, जिससे दस वर्षीय जनगणना ही न हो, बल्कि सारे देश के प्रौढ़ मताधिकारियों के रजिस्टर भी तैयार हो जाये, ताकि इन रजिस्टरों में गड़बड़ होने की कोई शिकायत न हो।

श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर दुहरी नीति के सम्बन्ध में बोले हैं। अब हमारे पास तीन प्रकार की सूचियां हैं—संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची। मसौदा-समिति ने समवर्त्ती सूची को अधिक विस्तृत बना दिया है। हमें समवर्त्ती सूची का अनुभव है। उससे केन्द्र और प्रान्तों का अन्तर आवृत्त हो जाता है। संघीय विधानों में यही राजनैतिक प्रवृत्ति दिखाई देती है कि समय पाकर संघीय सूची तो बढ़ जाती है और समवर्त्ती सूची छोटी होते-होते अदृश्य हो जाती है, क्योंकि जब एक बार केन्द्रीय विधान-मण्डल कानून-सम्बन्धी किसी अधिकार-क्षेत्र को अपने हाथ में ले लेता है, तो प्रान्तीय विधान-मण्डल का अधिकार-क्षेत्र समाप्त हो जाता है। इसलिये हमें यह समझना चाहिये कि दस या पन्द्रह वर्ष के समय में सारी समवर्त्ती सूची संघीय सूची का रूप धारण कर लेगी। हमें विचार करना चाहिये कि क्या हम यही चाहते हैं और क्या यही उचित है? यदि हम यह नहीं चाहते हैं, तो समवर्त्ती सूची को छोटे से छोटा बना देना चाहिये, या इस सूची में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र के विस्तार को निश्चित कर देना चाहिये।

अब मैं उत्तरदायी अथवा मंत्रिमण्डलमूलक अधिशासन के प्रश्न पर आता हूं। प्रत्येक उत्तरदायी शासन में यह परमावश्यक है कि उत्तरदायित्व की सीमाओं को स्पष्ट तथा निश्चित रूप से निर्धारित किया जाये। इस सम्बन्ध में मेरे विचार से

[श्री के. सन्तानम्]

कोई अर्थ-भ्रम न रहना चाहिये। यदि एक बार भी उत्तरदायित्व पर आवरण डाला जाता है, तो मंत्रिमंडलमूलक शासन का स्वतः निराकरण हो जाता हैं और प्रधानमूलक शासन सन्निकट आ जाता है। मुझे तो प्रधानमूलक शासन के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है और वह देश के लिये उपयुक्त भी हो सकता है। यदि आवश्यक हो, तो केन्द्र और प्रान्त सभी बातों और प्रतिफलों को समझ कर प्रधान-सम्बन्धी एक अध्याय सम्मिलित कर सकते हैं। कई अर्थों में प्रधानमूलक शासन प्रणाली भारत के लिये उपयुक्त और अन्य प्रणालियों से श्रेष्ठ सिद्ध होगी। इससे स्थिरता उत्पन्न होती है और मेरे विचार से इस समय भारत को लचीलेपन से स्थिरता की अधिक आवश्यकता है। परन्तु हमको ऐसा न करना चाहिये कि हम मंत्रिमंडलमूलक प्रणाली को स्वीकार तो करें और फिर अनेक प्रकार से उसकी जड़ खोदने का प्रयत्न करें।

उदाहरणार्थ प्रधान तथा शासकों के लिये निर्देश सम्बन्धी विलेख को ही लीजिये। मसौदा समिति ने प्रधान के लिये निर्देश सम्बन्धी विलेख के लिये एक अध्याय ही अलग रखा है। यदि भारत का प्रधान-मंत्री इन निर्देशों की उपेक्षा करे, तो क्या होगा? क्या गवर्नर-जनरल उससे यह कहेगा कि विधान के अनुसार मुझे इसका अधिकार है कि मैं आपसे कहूं कि आप निर्देशों का पालन करें? इसकी सम्भावना है कि भारत के प्रधान और प्रधान-मंत्री के बीच कलह उत्पन्न हो जायेगा। इन निर्देशों के विलेखों से यह भी सम्भव है कि प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों और गवर्नरों के बीच कलह उत्पन्न हो जाये। मेरे विचार से यदि हम उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें उसे पूर्ण रूप से स्थापित करना चाहिये। हमें आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता न करना चाहिये, क्योंकि इससे हम कई प्रकार की नियम विरुद्ध स्थितियों तथा द्विविधाओं में पड़ जायेंगे और हर प्रकार की द्विविधा से छुटकारा पाने के लिये विधान में विभिन्न प्रकार के उपायों को स्थान देना सरल न होगा।

मेरे पास जितना समय है, उसमें मैंने कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों की ओर संकेत मात्र किया है, क्योंकि जब हम विधान के एक-एक अनुच्छेद को उठायेंगे, तो उन पर विचार-विमर्श करना आवश्यक होगा।

परन्तु, श्रीमान्, दो एक ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय है कि उन पर विशेष रूप से विचार करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ विधान में परिवर्तन करने के प्रावधानों को ही लीजिये। यह प्रावधान है कि दोनों सभाओं के सदस्यों की एक निश्चित बहुसंख्या

द्वारा एक ही बैठक में विधान में परिवर्तन किया जा सकेगा। मेरे विचार में कोई ऐसी व्यवस्था न होनी चाहिये कि विधान में आसानी से परिवर्तन किया जा सके, क्योंकि राष्ट्रीय भावना में एकाएक परिवर्तन होने से कई प्रकार के राजनैतिक दल सशक्त हो सकते हैं। विधान को तो राष्ट्र की रीढ़ समझा जाना चाहिये। यदि वह आवश्यकता से अधिक लचीला हुआ और विधान मण्डल में किसी दल के बहुमत से बार-बार परिवर्तित हुआ, तो प्रजातंत्र की सारी बुनियाद विनष्ट हो जायेगी। इसलिये मेरे मत से विधान में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में जो प्रावधान हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। विधान में परिवर्तन करना आसान न होना चाहिये। यदि महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में परिवर्तन करने का अधिकार पार्लियामेंट को दिया गया, तो मेरी यह राय है कि सदस्यों की निश्चित बहुसंख्या से अधिक बहुसंख्या को इसका अधिकार होना चाहिये और कम से कम छः महीने में या एक वर्ष में दो बार इस सम्बन्ध में विचार होना चाहिये। इस प्रकार हम यह व्यवस्था कर सकेंगे कि विधान में परिवर्तन तभी किये जा सकेंगे, जब कि इसके प्रतिफलों को पूर्णरूप से अनुभव कर लिया जाये। हमें जल्दी में अपने विधान में परिवर्तन न करने चाहिये। कनाडा में जब से विधान बना है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। क्या इससे उसको कोई नुकसान हुआ है? संयुक्त राष्ट्र अमरीका में बहुत कम अवसरों में विधान में परिवर्तन होता है।

मेरे विचार से विधान को लचीला बनाने और उसमें आसानी से परिवर्तन करने की व्यवस्था करने की अपेक्षा उसे बेलोच बनाना ही स्थिरता के हित में श्रेयस्कर होगा। विधान ही हमारी स्वतंत्रता का अस्थिपिंजर है और अस्थियों को लचीला बनाने की अपेक्षा बेलोच बनाना ही श्रेयस्कर होगा।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि डा. अम्बेडकर, ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में बोलते समय बहक गये और उनका यह कथन उचित नहीं है कि वे आधुनिक विधान के लिये उचित पृष्ठभूमि नहीं प्रदान करते। कुछ हद तक तो मैं उनसे सहमत हूं, परन्तु ग्राम-पंचायतों की उनकी निन्दा से तथा उनके इस कथन से मैं सहमत नहीं हूं कि राष्ट्र पर जितनी आपदायें पड़ी हैं, उनका कारण वही रही हैं। मेरे विचार से क्रांतियों और उथल-पुथलों के होते हुये भी उन्होंने भारतीय जीवन को बनाये रखा और यदि वे न होती, तो भारत में अराजकता फेल जाती। मेरी तो इच्छा यह थी कि ग्रामीण स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में उचित सीमाओं के अन्दर वैधानिक व्यवस्था की जाती। निस्सन्देह इस सम्बन्ध में कठिनाइयां हैं, क्योंकि कई गांव ऐसे हैं, जो बहुत छोटे हैं और कई बहुत बड़े हैं और पंचायतों को स्थापित करने के लिये उनके समूह बनाना आवश्यक होगा, परन्तु मेरे विचार से किसी

[श्री के. सन्तानम्]

न किसी अवसर पर, जब सभी प्रान्त पंचायतें स्थापित कर चुकेंगे, उनके अस्तित्व को विधान में स्वीकार करना आवश्यक हो जायेगा, क्योंकि भविष्य में प्रत्येक ग्राम का स्थानीय स्वायत्त शासन ही इस देश की स्वतंत्रता की बुनियाद प्रमाणित होगा।

श्रीमान्, मैं एक मिनट में समाप्त कर रहा हूं। मुझे एक ही बात और कहनी है। मैं उसकी और केवल संकेत करूंगा। मैं प्रस्तावक महोदय के इस मत से सहमत हूं कि राज्यों और प्रान्तों के बीच कृत्रिम विभेद को यथासम्भव शीघ्रता से समाप्त कर दिया जाये। इस मार्ग में केवल यही रोड़ा है कि राज्यों के पास केन्द्रीय विषय होने से कुछ आर्थिक हित उत्पन्न हो गये हैं। यदि हम राज्यों द्वारा प्रान्तों के समान ही विधान स्वीकार करने पर जिन आर्थिक परिणामों का सामना करना पड़ेगा, उनके सम्बन्ध में उन्हें संरक्षण प्रदान करने की कोई व्यवस्था कर सकें, तो राज्यों को प्रांतों के स्तर पर आने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हमें यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिये कि प्रान्तों के स्तर पर आने से किसी भी राज्य को नुकसान नहीं होगा और साथ ही हमें उन्हें यह आश्वासन देना चाहिये कि यदि प्रान्तों के स्तर पर आने से उनको कोई क्षति हुई, तो उसकी पूर्ति केन्द्रीय धनराशि से की जायेगी। मेरा यह सुझाव है कि प्रान्तों से एकात्मकता स्थापित करने से उन्हें जो कोई भी आर्थिक हानि उठानी पड़े; उसके सम्बन्ध में किसी संरक्षण-व्यवस्था पर हम विचार करें। मैं इससे सहमत हूं कि हमें 'ए' वर्ग के राज्य और 'बी' वर्ग के राज्य नहीं रखने चाहिये। क्योंकि इससे केवल गड़बड़ ही पैदा होगी। मैं तो यह चाहता हूं कि इस प्रकार के विभिन्न वर्गों के प्रदेशों का अन्त कर दिया जाये। प्रादेशिक विधान केवल एक ही प्रकार का होना चाहिये, किन्तु उसमें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

श्रीमान्, समय सम्बन्धी कठोर नियम के कारण, जिससे मेरे विचार से विधान पर यथोचित विचार नहीं हो सकता, मैंने अपना कथन कुछ ही बातों तक सीमित रखा है और मुझे आशा है कि यह सभा उन पर विचार करेगी।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, एक योग्य वकील के नाते डा. अम्बेडकर ने विधान के मसौदे को बहुत मधुर शब्द कहकर इस सभा में उपस्थित किया है और उन्होंने बाहर के लोगों तथा इस सभा के भी कुछ माननीय सदस्यों को प्रभावित किया है परन्तु इस मापदण्ड से विधान को नहीं मापा जा सकता है। यह विधान इस देश में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित

करने के लिये बनाया गया है, और डा. अम्बेडकर ने स्थानीय अधिकारियों और ग्रामों की उपेक्षा करके जनतंत्रात्मक विचारधारा का ही शून्यन कर दिया है। श्रीमान्, स्थानीय अधिकारी ही देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के आधारस्तम्भ है और यदि विधान में उनके लिये कोई स्थान नहीं है, तो वह विधान विचार करने के योग्य ही नहीं है। स्थानीय अधिकारियों की इस समय बड़ी दयनीय अवस्था हैं जो प्रान्त यह शिकायत करते हैं कि केन्द्र अत्यन्त सशक्त बना दिया गया है और उनके कुछ अधिकार उनसे छीन लिये गये हैं, उन्होंने भी अपनी शक्ति के मद में अन्धे होकर स्थानीय निकायों के अधिकार छीन लिये हैं। प्रान्तीय सरकारों ने कुप्रबन्ध के नाम पर आज दिन 50 प्रतिशत से अधिक स्थानीय निकायों का शासन-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है। श्रीमान्, पहले ब्रिटिश शासन की भी यही नीति रही है और हमारी प्रान्तीय सरकारें स्थानीय निकायों की सारी प्रणाली में विस्तृत परिवर्तन करने की अपेक्षा उसी नीति का अनुसरण कर रही है। जब तक हमारे विधान में इन प्रान्तीय सरकारों को यह निर्देश न किया जाये कि वे इन संगठनों को ग्रामोन्नति के लिये उपयोगी साधन बनाये; श्रीमान्, मैं तो यह कहूंगा कि जनतंत्र के नाम पर इस विधान पर विचार करना ही निरर्थक है। स्थानीय निकायों की आर्थिक दशा अत्यंत दयनीय है। पश्चिमी देशों में स्थानीय निकायों के आय के साधन बिजली तथा आमोद-प्रमोद के साधन पर लगाये हुये कर ही हैं, परन्तु प्रान्तीय सरकारें इन करों को उन्हें देने के लिये राजी न होंगी। इस देश में ये कर प्रान्तीय सरकारें ही ले लेती हैं। इससे स्थानीय निकायों का केवल ढांचा ही ढांचा रह गया है। यदि यही मनोवृत्ति रही तो आप स्थानीय निकायों और ग्रामों से उन्नति की आशा कैसे कर सकते हैं? श्रीमान्, गवर्नर-जनरल महोदय ने अपने हाल के भाषणों में तथा हमारे उपप्रधान-मंत्री ने भी अपने बम्बई के भाषण में कहा कि प्रत्येक ग्रामीण को यह समझाना चाहिये कि वह एक जिम्मेदार आदमी है, वह एक जिम्मेदार औरत है और उसे यह अनुभव कराना चाहिये कि देश के शासन में उसका भी हाथ है। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि आप हमारे समाज में सबसे बहुसंख्यक इन ग्रामीणों की उपेक्षा करते रहेंगे, तो यह कैसे सम्भव हो सकेगा?

आप केवल अपने हाथ में शक्ति ले लेंगे और चोटी पर कुछ सुधार कर लेंगे, परन्तु आप उस जनसमुदाय की कुछ भी सहायता न कर सकेंगे, जो आज सुखी होने के लिये सचेष्ट है। इसके विपरीत यदि हम इस विधान में उन बातों की ओर संकेत न करें, जिन्हें मैंने बताया है, तो यह भावना और भी प्रबल हो जायेगी कि जनसाधारण की उपेक्षा की जा रही है। श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने

[श्री आर.के. सिधवा]

यह ठीक ही स्वीकार किया है कि कई अन्य देशों के विधानों के विभिन्न प्रावधानों को लिया गया है और उन्हें इस विधान में स्थान दिया गया है। मेरा अपना विचार यह है कि अन्य देशों के विधानों के कुछ सुन्दर प्रावधानों को लेने में कोई हानि नहीं है। केवल यही देखना चाहिये कि ये प्रावधान हमारे देश में भी उसी प्रकार लाभप्रद होंगे, जैसे कि वे अन्य देशों में हैं। परन्तु मैं अनुसूची 7 की सूचियों में देखता हूं, जो महत्त्वपूर्ण सूचियां हैं, कि संघीय अधिकारों की सूची, राज्यों की सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्त्ती सूची को सन् 1935 ई. के एक्ट से लेकर थोड़े से परिवर्तनों के साथ ज्यों का त्यों रख दिया गया है। परन्तु मैं नहीं जानता कि प्रान्तीय सरकारों से भी यह पूछने की फिक्र की गई है कि उनमें कुछ त्रुटियां तो नहीं रह गई हैं। मैं एक-दो बातों के बारे में कहूंगा। चुंगी, व्यवसाय-कर और भारत सरकार की इमारतों पर लगने वाले कर के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों और भारत सरकार के बीच विवाद रहा है और कई मामले संघीय न्यायालय के सम्मुख भी उपस्थित किये गये हैं। मुझे तो यह दिखाई देता है कि उपसमिति ने इन मदों को बिना उन कठिनाइयों पर विचार किये हुये ही सम्मिलित कर लिया है, जिन्हें कि प्रान्तीय सरकारों ने पैदा कर दिया है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि जब ये तीन सूचियां यहां उपस्थित की जायें, तो सभा इन पर ध्यानपूर्वक विचार करे। पिछली बैठक में ये सूचियां उपस्थित की गई थी, परन्तु समय कम था, इसलिये ये जैसी की तैसी छोड़ दी गई। मैं आशा करता हूं कि इन सूचियों पर बहुत सावधानी से विचार किया जायेगा क्योंकि ये विधान के अन्य प्रावधानों के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं।

जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता कि इस समिति को इस सभा के सर्वसम्मत निर्णय को उलट देने का अधिकार था या नहीं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इस उपसमिति को सिफारिशें करने का अधिकार है और मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि ये भी सिफारिशें ही हैं। परन्तु जब एक आधारभूत विषय के सम्बन्ध में मौलिक अधिकारों के एक आधारभूत सिद्धान्त के बारे में सभा ने पूर्ण रूप से विचार करके एक निर्णय किया था, तो मेरे विचार से इन सिफारिशों को करने में भी उसने अपनी अधिकार-सीमा का उल्लंघन किया है।

मैं केवल एक उदाहरण दूंगा। विधान-परिषद ने अपने पिछले अधिवेशन में यह मूलाधिकार निश्चित किया था:

''संघ के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा स्वातंत्र्य से यथोचित कानूनी कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न

किसी व्यक्ति को कानून के सामने समता से अथवा कानूनों के समरक्षण से वंचित किया जायेगा।''

मसौदा-समिति ने इसमें परिवर्तन किया है। मैं तो कहूंगा कि उसमें क्रांतिपूर्ण परिवर्तन करके उसने सभा के सम्मुख उपस्थित किया है। मैं उनकी सिफारिश पढ़ता हूं:

''भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से कानून द्वारा नियम कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा...''

अन्य शब्दों को निकाल दिया गया है। हम इस विषय पर यथासमय विचार करेंगे। परन्तु श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि जब पिछली बार हमने मूलाधिकारों को स्वीकार किया था तो उनके सम्बन्ध में यह शिकायत थी कि जिस सीमा तक हमें जाना चाहिये था, वहां तक हम नहीं गये हैं; परन्तु यदि अब नागरिकों के उन अधिकारों को भी आप संकुचित कर देते हैं, तो श्रीमान्, मूलाधिकारों का नाम ही निरर्थक हो जायेगा।

एक बात के सम्बन्ध में जो राज्यों के विधान के सम्बन्ध में कहीं गई है, मैं वास्तव में प्रभावित हुआ हूं। प्रस्तावक महोदय ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसका मैं समर्थन करता हूं। पिछली बार जब हमने यह विधान बनाया था, तो राज्यों की स्थिति आज से भिन्न थी और मैं नहीं समझता कि प्रत्येक नये राज्य के लिये एक पृथक विधान आवश्यक है। एक प्रावधान इस प्रकार होना चाहिये कि सभी राज्यों को इस विधान का प्रान्तीय भाग स्वीकार करना चाहिये। गवर्नर के स्थान में नरेश को गवर्नर समझा जाना चाहिये और इसी प्रकार कुछ अन्य परिवर्तन किये जाने चाहिये; परन्तु प्रत्येक राज्य के लिये पृथक विधान न होना चाहिये। आखिर वे सब भारतीय संघ में समाविष्ट हो गये हैं। उनके कानून हमारे यहां के कानूनों के समान ही होने चाहिये। अब किसी एक आदमी का राज नहीं है और मेरी समझ में नहीं आता कि एक ही देश में दो प्रकार के कानून किस प्रकार होंगे, विशेषतया जब कि सभी राज्य संघ के ही अंग हो गये हैं। इसलिये श्रीमान्, इस प्रश्न पर कि क्या राज्यों के लोगों को अपने ऐसे विधान बनाने देने चाहियें, जो इस समय हम जिस मुख्य विधान को बना रहे हैं, उसके आधारभूत सिद्धान्तों का ही हनन करें। मूलाधिकारों के सम्बन्ध में उनके निर्णय हमारे निर्णयों से संकुचित हो सकते हैं। कई बातों के सम्बन्ध में हमने इस देश के प्रत्येक नागरिक के लिये अन्तिम रूप से जो व्यवस्था की है, उसके विरुद्ध उनके निर्णय हो सकते हैं।

[श्री आर.के. सिधवा]

श्रीमान्, उदाहरणार्थ उच्च न्यायालयों ही को लीजिये। आजकल भारत के उच्च न्यायालयों में सबसे अच्छे लोग न्यायाधीशों के पदों पर आसीन हैं वे उच्चतम कोटि के लोग हैं और उनके निर्णयों को लेकर संघीय न्यायालय और प्रिवी कौंसिल में अपील हो सकती है। परन्तु राज्यों के इन द्वितीय श्रेणी के न्यायालयों के सम्बन्ध में—द्वितीय श्रेणी के कह कर मैं उनका निरादर नहीं कर रहा हूं, परन्तु यह सच्ची बात है कि वहां के लोग प्रथम श्रेणी के नहीं हैं—वहां के लोगों के निर्णयों के विरुद्ध संघीय न्यायालय में अपील नहीं हो सकती। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या यह ठीक है कि आप राज्य के नागरिक को इस अधिकार से वंचित करें? इसलिये श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस विषय पर भी गम्भीरता से विचार करना होगा और राज्य के लोगों के काम में आसानी पैदा करने के लिये विधान का प्रान्तीय अंग कुछ परिवर्तनों के साथ उनके लिये भी अक्षरशः लागू किया जाना चाहिये।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने और उनकी रक्षा की ओर संकेत किया गया है। मैं अल्पसंख्यक-समिति और अल्पसंख्यक-उपसमिति में था और जिस प्रकार बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न को हल किया है, उसके लिये वह धन्यवाद का पात्र है और मैं यह कहूंगा कि इस सम्बन्ध में किसी के लिये भी शिकायत करना उचित नहीं है। जहां तक मेरे सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, यद्यपि जगहें सुरक्षित रखने के लिये हमसे प्रस्ताव किया गया था, परन्तु हमने धन्यवाद देकर इसे अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार कल काजी सय्यद करीमुद्दीन ने जगहों के संरक्षण को हटा देने पर जोर दिया। यह वक्तव्य, यद्यपि यह बहुत देर में दिया गया, स्वागत के योग्य है। जब बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने जगहें सुरक्षित रखने का प्रस्ताव पारसी सम्प्रदाय के सम्मुख रखा, तो हमने कहा—'जी नहीं, आपको धन्यवाद। हमें वह नहीं चाहिये।' इसी प्रकार श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि अन्य समुदाय भी बहुसंख्यकों की भेंट को धन्यवाद देकर अस्वीकार कर देंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): मि. खलीकुज़्ज़मा संरक्षण चाहते थे, न कि सय्यद करीमुद्दीन।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं नहीं समझ पाया कि वे क्या कह रहे हैं। इसलिये मैं अनुरोध करता हूं कि साम्प्रदायिकता के इस विषय को इस देश से निकाल बाहर किया जाये और इस विधान का ऐसा स्वरूप निश्चित किया जाये, जिस पर हम

गर्व कर सकें और संसार के लोगों से यह कह सकें कि भारतीयों ने ऐसा विधान बनाया है, जो अन्य देशों द्वारा अनुकरणीय है। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं समाप्त करता हूं। मैं आशा करता हूं कि मैंने जो बातें कही हैं, उन पर यथोचित समय पर ध्यान दिया जायेगा। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

श्री रामसहाय [संयुक्त राज्य ग्वालियर-इंदौर-मालवा: (मध्य भारत)]: वाइस प्रेसीडेण्ट साहब, विधान के सम्बन्ध में बहुत सी बातें अभी तक बहुत से साहबान ने यहां पर कही हैं। उनको मैं इस वक्त यहां पर नहीं दोहराऊंगा। मैं सिर्फ स्टेट्स के सम्बन्ध में कुछ अर्ज करना चाहता हूं।

मैं यह बात हाउस के सामने रख देना चाहता हूं कि स्टेट की जनता बिल्कुल इस बात को इत्तफाक करती है कि सेंटर को मजबूत होना चाहिये और वह इस तरह से हर प्रकार से सेन्टर के मजबूत बनाने के साथ है। लेकिन मुझे यह निवेदन करना है कि अभी तो विधान हमारे सामने आया है, उसमें स्टेट को बहुत कुछ ज्यादा नैगलैक्ट किया गया है। मिसाल के तौर पर एक बात मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। वह यह है कि अभी तक जो शिड्यूल फर्स्ट का 3 पार्ट है, उसमें स्टेट को ज्यों का त्यों रखा गया है। हालांकि बहुत सी स्टेट यूनियन में आ चुकी हैं और वह एक तरह से अपने आपको प्रान्त की शक्ल में बना चुकी हैं। मिसाल के तौर पर मैं मध्य भारत यूनियन की बात आपके सामने रखना चाहता हूं। मध्य भारत-राज्यप्रमुख ने एक नया इंस्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन 15 जून को तहरीर किया है और इसके मुताबिक उन्होंने वह सारे सबजैक्ट्स जो सातवें शिड्यूल की पहली लिस्ट में व तीसरी लिस्ट में हैं, टैक्स या ड्यूटी को छोड़ कर सब को सेंटर के हवाले कर देना मंजूर कर लिया है। जिसके मानी हैं कि जुडिशियरी में भी उन्होंने सेंटर की मातहती मान ली है, लेकिन फिर भी ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन के सेक्शन 111, 113 में सुप्रीम कोर्ट में वहां के हाईकोर्ट की अपील नहीं हो सकेगी। मैं नहीं समझता कि जब नये इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन के मातहत मध्यभारत यूनियन ने अपने सारे राइट्स सरण्डर कर दिये हैं, अपना सारा हक उनको दे दिया है, उनकी सब बातें मान ली हैं, तो क्या वजह है जिसकी वजह से वहां के हाईकोर्ट की अपील सुप्रीम कोर्ट में करने को मना कर दिया गया है। दफा 113 में यह बताया गया है कि रिफ्रेंस सुप्रीम कोर्ट में कर सकते हैं। लेकिन मैं यह समझ नहीं पाया कि सुप्रीम कोर्ट में वहां के हाईकोर्ट की अपील मान्य क्यों नहीं हो सकती। यह एक ऐसी चीज है, जो जनता के हकूक पर खास तौर से असर करती है।

मैं यह कहूंगा कि यही असर एक वजह काफी हो सकती है कि जनता के हक़ूकों को महफ़ूज रखने के लिये। यूनियन्स की हाईकोर्ट को प्रान्तों की हाईकोर्ट

[श्री रामसहाय]

की लाइन में लाने के लिये सुप्रीम कोर्ट के मातहत बना दिये जाये, तो इससे हमको अपने काम में बहुत कामयाबी व सहूलियत होगी और यूनियन को प्रान्तीय लाइन में लाने में भी काफी सहायता मिलेगी। कहा जा सकता है कि वहां के हाईकोर्ट काफी उन्नत नहीं हैं, लेकिन मैं यह बिल्कुल गर्व के साथ कह सकता हूं कि इन्दौर और ग्वालियर के जो हाईकोर्ट है, उनका भी स्टेटस दूसरे प्रान्तों के हाईकोर्ट से कम नहीं है, न उनका स्टेंडिंग ही कम है और उनमें भी उसी तरह से काबिल जजेज हैं, जिस तरह से प्रान्तों के हाईकोर्टों में होते हैं।

आनरेबिल अम्बेडकर साहब यह चाहते हैं कि स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बन रही हैं, वह न बने। लेकिन मैं समझता हूं कि अगर डा. अम्बेडकर साहब इस बारे में मिनिस्ट्री आफ स्टेट्स से थोड़ा सम्बन्ध रखते, वहां इस बात को रखते तो इस किस्म की पेचीदगियां, जो पैदा कर दी गई हैं, वह न होती। मिसाल के तौर पर मध्यभारत यूनियन की कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का मामला उनके सामने रखता हूं। वहां एक अन्तरिम लेजिस्लेचर बन रही है और दूसरी कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनेगी। एक ही वक्त में यह दोनों चीजें रखने की क्या वजह हो सकती है। वहां अन्तरिम लेजिस्लेचर रहेगा और उसके बाद फिर कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनेगी। अभी अन्तरिम लेजिस्लेचर का सेशन होने की नौबत नहीं आई है। कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली का काम कब शुरू होगा, यह देखना है। अन्तरिम लेजिस्लेचर के सदस्य यहां की कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली में विधान बनाने के लिये बैठे हैं। मेरी समझ में यह बात नहीं आती है कि वही लोग जब वहां धारासभा में बैठकर कानून बना सकेंगे और वहां विधान बना रहे हैं, तो वहां का विधान क्यों नहीं बना सकेंगे। इस तरह की पेचीदगियां पैदा कर दी गई हैं। मैं समझता हूं कि अगर डॉ. अम्बेडकर साहब इस बारे में स्टेट मिनिस्टर सरदार पटेल से बातचीत करते, तो मुझे यकीन था कि बहुत से मसलों को आसानी के साथ हल किया जा सकता था।

स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूयेंट असेम्बली बनी है, या बन रही है, अब उनकी जरूरत बाकी नहीं रहती। खास तौर से ऐसी सूरत में जब कि करीब-करीब सारी रियासतें प्रान्त की शक्ल अख्तियार कर चुकी हैं। मैं हाउस से यह निवेदन करना चाहता हूं कि पहले शिड्यूल के पार्ट 3 को रिवाइज़ कर देना चाहिये और जहां यूनियन बन गई हैं, उनको पहले पार्ट में शामिल कर देना चाहिये। इस तरह से शामिल करने का नतीजा यह होगा कि वह प्रान्त की शक्ल अख्तियार कर लेंगी।

इनमें और प्रान्तों में फर्क यह होगा कि प्रान्तों में जो गवर्नर होंगे, वह चुने हुये होंगे और यूनियनों में स्टेट के राजप्रमुख होंगे, जो प्रिंसेज के चुने हुये होंगे। जैसा कि अभी मिस्टर सन्तानम् और मिस्टर सिधवा ने कहा कि इस तरह प्रान्त और यूनियन के एक होने से हमको सुविधा हो जायेगी और मैं समझता हूं कि यह चीज बहुत जरूरी और लाजमी है। हमको इन दो शिड्यूल्स के पार्टस को रिवाइज़ कर देना चाहिये और उनको इस तरह से बनाना चहिये कि जो स्टेट्स यूनियन में आ चुकी हैं, उनको प्रान्तीय लेबल में लाया जाये।

एक्सपर्ट कमेटी, जो फाइनेंशियल प्रावीजन्स के बारे में मुकर्रर की गई थी, उसने यह बात तय की है कि 10 साल के अन्दर सारे स्टेट्स को कम से कम प्रान्तों के लेबल में होना चाहिये। मैं देखता हूं कि इस सम्बन्ध में इस विधान में ऐसी कोई चीज नहीं रखी गई है, जिससे कि एक्सपर्ट कमेटी की रिपोर्ट को प्रेक्टिकेबिल शेप दिया जाये। तो मैं ड्राफ्टिंग कमेटी से यह निवेदन करूंगा कि वह कम से कम इस तरह की शक्ल जरूर अख्तियार करे जिससे जिन स्टेट्स के यूनियन बन चुके हैं, उनको प्रान्तीय लेबल में खड़ा किया जाये और इस तरह के कार्य में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये।

मैं हाउस के सामने एक बात और अर्ज करना चाहता हूं कि मैसूर और ट्रावनकोर की जो बड़ी-बड़ी स्टेट्स हैं और जो अपने को बहुत प्रान्तों से अच्छा कहने का दावा करती हैं, वहां रूलर्स व नुमाइन्दों से यह अर्ज करूंगा कि उनको भी अपना इन्ट्रस्ट छोड़कर प्रान्त की शक्ल में आ जाना चाहिये, जिस तरह से दूसरे प्रान्त हैं उन सब साधनों को छोड़कर, जो प्रान्त के लिये जरूरी नहीं हैं, सबको सेंटर को दे देना चाहिये। इस तरह से हम सब लोग एक मजबूत सेंटर के बनाने में सहयोग दे सकते हैं। मैं नहीं समझ सकता हूं कि ग्वालियर स्टेट यूनियन से क्यों बाहर और स्टेटों की तरह नहीं रह सकती थी। मगर वहां के राजा ने खुद इस बात की जरूरत समझी और उसने अपने सारे अधिकार सेंटर को दे दिये। जिस तरह से इस विधान में प्रान्तों की जनता के लिये रखा गया है, उसी तरह से स्टेट की जनता के लिये यह विधान होना चाहिये। इसलिये मैं यह बात हाउस के सामने रखना चाहता हूं और ड्राफ्टिंग कमेटी से खास तौर से इस बात के लिये अर्ज करना चाहता हूं कि उनको कोई तरीका ऐसा अख्तियार करना चाहिये कि जो यूनियन प्रान्तों की शक्ल में बन चुके हैं और जो बड़ी स्टेट अभी यूनियन में नहीं आई हैं, उनके लिये कोई ऐसा रास्ता बना दिया जाये, जिससे वह इस बात में एक तरह की शक्ल अख्तियार कर सकें।

श्री जयनारायण व्यास: वाइस प्रेसीडेंट साहब, डॉ. अम्बेडकर और उनके साथियों ने जो मसविदा कांस्टीट्यूशन का हमारे सामने रखा है उसमें जो परिश्रम किया गया है, उसके लिये उनको और उनके दूसरे साथियों को और टाइपिस्टों और कापिइस्टों, सबको धन्यवाद देना पड़ेगा। यह बड़ा भारी मसविदा है और इसमें सारी बातें आई हैं। लेकिन जैसा कि आम तौर पर इन्सानी मसविदों में हुआ करता है, इस मसविदे में भी बहुत सारी कमियां रह गई हैं। खास तौर से स्टेट नाम डालकर और स्टेट की परिभाषा, डेफिनिशन न देकर तो एक तरह से हम लोगों को उलझन में डाल दिया है। टेरीटोरियल दृष्टि से, प्रादेशिक दृष्टि से स्टेट क्या हैं, यह बिलकुल वेग (Vague) सा रख दिया गया है। उसकी परिभाषा ही नहीं मिलती। साथ ही साथ नागरिक अधिकारों की दृष्टि से भी अगर देखा जाये, तो पता नहीं चलता कि स्टेट किसे कहते हैं। फंडामेंटल राइट्स की दृष्टि से आगे चलकर स्टेट्स में लेजिस्लेचर आफ दी स्टेट्स, और लोकल गनर्वमेंट और गवर्नमेंट आफ दी स्टेट्स, इन सबको स्टेट्स बता दिया गया है। और साथ ही चूंकि स्टेट्स आम तौर पर इंडियन स्टेट्स, रियासतों के लिए लागू होता था, इसलिए स्टेट्स शब्द के बदले में शायद कोई दूसरा शब्द होता, तो ज्यादा अच्छा होता।

अब स्टेट्स को भी कई-कई हिस्सों मं बांट दिया गया है। गवर्नर्स प्राविंसेज़, चीफ कमिश्नर्स प्राविंसेज़ हैं और जो तीसरी चीज है, उसको रियासतें कह सकते हैं। यानी इंडियन स्टेट्स रहेंगी। शिड्यूल पार्ट 1 के पार्ट 3 में उनको बताया गया है। डॉ. अम्बेडकर साहब ने अपनी स्पीच में जो बातें कहीं कि स्टेट्स को इतना बड़ा हो जाना चाहिये, जितने कि करीब-करीब प्राविंसेज़ होते हैं और उनको उसी तरह से रहना चाहिये, जैसे कि किसी प्राविंस को रहना है, मैं उन भावनाओं का समर्थन करता हूं। दरअसल हम जो स्टेट्स में रहने वाले हैं, वे छोटे-छोटे रहकर, छोटे-छोटे इलाकों में रहकर अपनी आर्थिक व्यवस्था पूरी नहीं कर सकते और अपना इन्तजाम भी अच्छी तरह से नहीं निभा सकते। लेकिन साथ ही साथ हम डॉ. अम्बेडकर साहब और उनके साथियों से भी पूछना चाहेंगे कि हमको प्राविंसेज़ के बराबर रखने के लिये आपको भी कुछ फिक्र करनी चाहिए थी। आपने जो शिड्युल 1 का पार्ट 3 रखा है, उसमें आपने हमको छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया है। आखिर उसमें भी हमें बड़ा-बड़ा बनना चाहिए था। आपने जो फैडरल कोर्ट में

अपील के लिए प्राविजन रखा है, उसके सम्बन्ध में जिनको कि रियासतें कहते हैं, अर्थात् प्रिंसेज स्टेट्स कहते हैं, उनको यह अपील का प्राविजन नहीं मिला है। यह केवल प्राविंसेज को मिला है, तो हमको इस फैडरल कोर्ट की अपील के मामले में हरिजन क्यों बना दिया गया है। तो जहां तक फेडरल कोर्ट और न्यायालय से ताल्लुक रखने वाली यह बात है, उसमें स्टेट्स के लोगों को हरिजन बनाने की जो यह नीति है, वह यह बताती है कि आपने भी बड़े-बड़े यूनिट बनाने के लिये कुछ फिक्र नहीं की है। बल्कि मैं तो यह देखता हूं कि आपने मैन्टल रिजर्वेशन रख छोड़ा है। आप कहते हैं कि बड़े-बड़े स्टेट्स बनाइये, लेकिन आपको चाहिए कि आप हमको भी हक दें। मिस्टर सिधवा ने अभी कहा कि आप बड़े-बड़े प्राविंसेज के बराबर अपने को बना लीजिये और पार पर उनके साथ आ जाइये। मैं पूछता हूं कि कौन पार पर नही आना चाहता। लेकिन आप तो कहते हैं कि स्टेट्स के प्रिंसेज और प्राविंसेज के आदमी गवर्नर हो सकते हैं। लेकिन आप यह मौका स्टेट्स के लोगों को क्यों नहीं देते? अगर आप चाहते हैं कि स्टेट्स और गवर्नर्स प्राविंसेज दो चीज हैं, तो आपको साफ बात करनी चाहिए और साफ कह देना चाहिए कि हम स्टेट्स के लिए यह रिजर्वेशन रखना चाहते हैं। इतनी-इतनी बातें हम अलग रखेंगे और स्टेट्स के लोगों को यह नहीं देंगे। आपको यह बातें साफ कहनी चाहिए। लेकिन एक तरफ तो कहा जाता है कि स्टेट्स को गवर्नर्स प्राविंसेज लोगों को यह हक नहीं होगा कि वह गवर्नर बन सके, वहां के राजा भले ही बन सकें, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं समझता हूं कि यह इस कांस्टीट्यूशन में कुछ कमी है और इस कमी को पूरा करना चाहिए।

दूसरी बात जो मैं कह देना चाहता हूं, वह है प्राविंसेज के इलाकों के बारे में। इस विधान के अन्दर यह रखा गया है कि जो प्राविंसेज है, उनके कुछ इलाके निकल कर दूसरे इलाकों में मिल सकते हैं। दो या दो से ज्यादा इलाके मिलकर एक प्राविंस बना सकते हैं। इस तरह के प्राविंसेज बनाने के लिए जो शर्त रखी गई है वह यह है कि स्टेट के प्रेसीडेंट को या तो स्टेट का लेजिस्लेचर या उसके मेम्बरों की मैजारिटी जाकर अर्ज कर दें, या उसके मेम्बरान जाकर अर्ज

[श्री जयनारायण व्यास]

कर दें कि हम अपना एक प्राविंस बनाना चाहते हैं। लेकिन इस मामले में भी स्टेट्स के लोगों के लिए एक रिजर्वेशन रखा गया है, जो शिड्यूल 1 के पार्ट 3 के अन्दर आ गया है। स्टेटों को अपने लेजिस्लेचरों के मार्फत या अपने लेजिस्लेचर के मैम्बरों के मार्फत अर्ज कर देने पर एक बड़ा यूनिट बनाने की इजाजत नहीं है। उसके लिये कंसेंट आफ दी स्टेट इज नैसेसरी। मैं नहीं समझता कि कंसेंट आफ दी स्टेट के मायने क्या हैं? अगर स्टेट के लेजिस्लेचर की राय आ गई, अगर उसके मेम्बरों की राय आ गई है, तो फिर यही मेम्बरों की राय कंसेंट आफ दी स्टेट होनी चाहिये थी; लेकिन साफ मायने शायद कंसेंट आफ दी स्टेट से ''कंसेंट आफ दी रूलर'' हैं। अगर यह बात नहीं है, तो फिर क्या रेफरैंडम लिया जायेगा, या किसी और दूसरी, पद्धति से मालूम किया जायेगा। अगर कंसेंट आफ दी स्टेट के मायने कंसेंट आफ दी रूलर नहीं हैं, तो यह बतलाया जाना चाहिये। इसलिए मेरे ख्याल में जहां तक कि स्टेट्स का ताल्लुक है, विधान पूरे मुकम्मिल तौर पर साफ नहीं है।

दो-एक बातें इस विधान के बारे में मैं और कह देना चाहता हूं। मैं इस बात की प्रशंसा करूंगा कि जो हक दिए गए हैं, वह अलग-अलग क्लासेज के लोगों को बराबर के हक दिए गए हैं। लेकिन पता नहीं जान बूझकर या कैसे, जहां कुओं और धर्मशालाओं का हक दिया गया है, वहां मंदिरों में जाने का हक़ नहीं दिया गया है। पता नहीं अम्बेडकर साहब के ध्यान में यह बात आई या नहीं कि मन्दिरों में हरिजनों को जाने का हक़ क्यों नहीं दिया गया है? मैं समझता हूं कि या तो यह गलती है, या ओमीशन रह गया है। अगर वह ओमीशन रह गया है, तो वह इसको पूरा करेंगे।

एक चीज यह है कि माइनारिटी और मैजारिटी दोनों में भेद रखने की जरूरत नहीं की गई है और जो सिटीजन है, उसको आम तौर पर सिटीजन समझा गया है। लेकिन फिर भी इस बात को मान लिया गया है कि अगर कोई शिक्षा-संस्थायें, एजूकेशनल इंस्टीट्यूशंस चलती हों और उनको माइनारिटी चलाती हो, तो फिर उनको भी स्टेट मदद दे सकेगी। तो इसके मायने यह है कि अभी तक जो कम्युनल स्कूल्स और कम्युनल एजुकेशन इंस्टीट्यूशंस हैं, उनको चलाने की इसमें गुंजाइश

रखी गई है। मैं समझता हूं कि इस आज़ादी के जमाने में जब कि हम माइनारिटी और मैजारिटी दोनों को भाई-भाई की तरह रहना चाहिये, उस वक्त इस तरह की गुंजाइश रखना कोई ठीक बात नहीं है। ग्रांट इन एड तो यही बात कहती है।

मुझे सिर्फ एक बात और कहनी है और वह है लैंग्वेज के बारे में। इसके बारे में हमारे कई भाइयों ने चर्चा की है और वह यह है। एक साहब ने तो यह फरमाया कि यहां हिन्दी इम्पीरियलिज़्म कायम किया जा रहा है। दूसरे साहब ने फरमाया कि यहां तो लिंग्विस्टिक फैनेटिसिज़्म कायम किया जा रहा है। मैं उनसे यह अर्ज करना चाहता हूं कि कोई हिन्दी इम्पीरियलिज़्म या कोई लिंग्विस्टिक फैनेटिसिज़्म की बात नहीं है, जब हम यह कहते हैं कि हमारी कोई नेशनल लैंग्वेज होनी चाहिए। अगर हम अंग्रेजी को अपना सकते हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि हम हिन्दी को क्यों नहीं अपनायें। मगर आप हिन्दी को नहीं अपनाते, तो हिम्मत करके कह दीजिये कि अंग्रेजी हमारी नेशनल लैंग्वेज है। पर ऐसा करते नहीं। तो अंग्रेजी हमारी नेशनल लैंग्वेज है, नहीं और दूसरी लैंग्वेज को हम नेशनल लैंग्वेज बनने नहीं देंगे, यह बात ठीक नहीं है। सहानुभूति हो सकती है, लेकिन उनके लिए साथ ही मैं यह बात भी कह दूं कि उनको अब अपनी एक लैंग्वेज बनाने की कोशिश करनी चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे, तो खतरा यह नहीं है कि अंग्रेजी हमारे ऊपर लद जायेगी, बल्कि खतरा यह है कि जो आज लिंग्विस्टिक प्राविंसेज की बात चल रही है, वह लिंग्विस्टिक कंट्रीज के रूप में परिणत हो जायेगी। हम यह नहीं कहते कि हम एक भाषा ही बोलें। जब तक यह साहिबान न बोल सकें, अंग्रेजी बोलें, कोई मना नहीं करता। मैं खुद भी हिन्दी बोल रहा हूं, यद्यपि मेरी भाषा राजस्थानी है, जो हिन्दी से अलग है और जिसमें हिन्दी से कुछ खास खूबसूरतियां हैं। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी मैं जानता हूं कि ज्यादा से ज्यादा आदमी हिन्दी बोल सकते हैं और हिन्दी सीख सकते हैं। इसलिए एक भाषा हमको बनानी चाहिए। तो मैं यह उम्मीद करता हूं कि जो लोग हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की कोशिश कर रहे हैं, उनके बारे में यह गलतफहमी नहीं करनी चाहिए कि वह भाषा का आधिपत्य जमाना चाहते हैं, बल्कि वह एक भाषा चाहते हैं जो कि एक मुल्क के लिए जरूरी है। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रान्तीय

[श्री जयनारायण व्यास]

भाषायें खत्म कर दी जायेंगी, या जो जगह अंग्रेजी की मिली हुई है, वह खत्म कर दी जायेगी। यह हो सकता है कि आगे जाकर अंग्रेजी खत्म हो जाये।

मैं इन शब्दों के साथ, डा. अम्बेडकर ने जो विधान पेश किया है, उसका समर्थन करता हूं और आशा है कि उनको जो रद्दोबदल सुझाई है, उसको उसमें लाने की कोशिश करेंगे।

***श्री बी.ए. मांडलोई** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा-समिति के सभापति डा. अम्बेडकर ने अपने बहुत ही स्पष्ट भाषण में विधान के मसौदे की मुख्य बातों की व्याख्या की है। जो प्रश्न उठाये गये हैं, अर्थात् शासन का स्वरूप क्या है और देश का विधान कैसा है, उनके सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि वह संघीय शासन है और उसके साथ सशक्त केन्द्र है, तथा वह परिषदात्मक शासन भी है, जिसमें एक ही न्यायाधीशवर्ग है और आधारभूत कानूनों के सम्बन्ध में एकरूपता है। उन्होंने यह भी कहा कि स्थिरता की अपेक्षा उत्तरदायित्व पर जोर दिया गया है। यह प्रणाली शांतिकाल में तथा युद्धकाल में भी शक्तिशाली प्रमाणित होगी। विधान के मसौदे की जो आलोचनाएं की गई हैं, उनका उत्तर उन्होंने अपने भाषण में दिया है और मैं यह कहूंगा कि उनके भाषण में विधान के मसौदे की बहुत ही स्पष्ट व्याख्या की गई है। मसौदा-समिति ने जिस विधान के मसौदे को तैयार किया है, वह विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर आधृत है, अर्थात् संघीय अधिकार समिति, प्रान्तीय विधान-समिति, परामर्श-समिति और अल्पसंख्यकों की समिति पर वह आधृत है। विधान-परिषद् ने अपने पहले ही अधिवेशन में विधान के लक्ष्य के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकार किया था। वह प्रस्ताव हमारे आदरणीय नेता पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किया गया था और एकमत से स्वीकार कर लिया गया था। हमें यह देखना है कि हमारा विधान उस प्रस्ताव पर, उस लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पर आधृत है, या नहीं जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव की मांगों को पूरा किया गया है। मेरा यह निवेदन है कि विधान का मसौदा लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव का सच्चा प्रतिबिम्ब है और इसलिए हम यह कह सकते हैं कि इसने हमारे लक्ष्य की पूर्ति की है।

हमारे देश और राष्ट्र के उद्देश्य के सम्बन्ध में एक और कसौटी है, जिस पर हमें देखना है कि यह विधान का मसौदा पूरा उतरता है या नहीं। वह कसौटी यह है कि क्या उससे हमारी स्वतंत्रता, हमारी स्वाधीनता और हमारे प्रजातंत्रात्मक असाम्प्रदायिक शासन का पोषण होता है या नहीं। मेरा अपना यह मत है कि इस दृष्टिकोण से भी विधान के मसौदे से हमारे लक्ष्य की पूर्ति होती है।

परन्तु इस विधान के मसौदे में कुछ बातें छूट गई हैं। और कुछ विषयों पर यथोचित जोर नहीं दिया गया है। जो बातें छूट गई है, वे राष्ट्रीय पताका और राष्ट्रीय गान के सम्बन्ध में हैं। विधान के मसौदे में और विधान में, जिससे हमारे देश का शासन होगा, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय पताका को यथोचित स्थान मिलना चाहिये। इसकी भी आवश्यकता है कि एक भाषा और एक लिपि के सम्बन्ध में कोई प्रावधान रखा जाये। इस सम्बन्ध में हमारी निश्चयोक्ति होनी चाहिए; क्योंकि आखिर हमारा लक्ष्य तो यही है कि हमारा एक राष्ट्र हो और एक राज्य हो। यदि हमारी एक भाषा न हुई तो हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारा एक राष्ट्र है और एक राज्य है। हमारे देश में प्रचलित विभिन्न भाषाओं पर विचार करने पर यह अविवाद कहा जा सकता है कि हिन्दी को और देवनागरी लिपि को ही इस सम्मानित पद पर विभूषित किया जाये। हमें अंग्रेजी भाषा को यथाशीघ्र विदा कर देना चाहिये क्योंकि हमारी राष्ट्रीयता के लिए यह एक अपमानजनक बात होगी कि हम एक विदेशी भाषा को स्वीकार करें। इस देश के लोगों का एक बृहत् समुदाय हिन्दी भाषा बोलता है और उसे समझता है, तथा देवनागरी लिपि एक बहुत ही वैज्ञानिक लिपि है और उसे सरकारी लिपि मान लेना चाहिये।

यद्यपि हमने केन्द्र को काफी शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया है परन्तु मैं निवेदन करता हूं कि हमने प्रान्तों की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया है। प्रान्तीय आयव्ययक असम्पन्न रहते हैं और प्रान्त बराबर दरिद्रता से पीड़ित रहते हैं। उन पर बहुत बड़े दायित्व है। उन्हें अज्ञान को, रुग्णता की और कई बातों को मिटाना है और राष्ट्रनिर्माण के विभागों को तथा रचनात्मक कार्य को चलाना है। केन्द्रीय आय से न्याय आधार पर प्रान्तों को धनराशि दी जानी चाहिए, ताकि वे यथोचित रूप से और योग्यता से अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें।

[श्री बी.ए. मांडलोई]

डा. अम्बेडकर ने अपने भाषण में राज्यों के सम्बन्ध में एक अपील की है और वह यह है कि जो राज्य संघांगों में परिणत हो गये हैं और भारतीय संघ में समाविष्ट हो गये हैं, उन्हें प्रान्तों के ही स्तर पर रखा जाना चाहिये। हम यह अवश्य चाहते हैं कि वहां के कानून भी हमारे ही समान हों और वहां भी उन्नति हमारे ही समान हो। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि विधान के मसौदे में हमें प्रान्तों और राज्यों में विभेद न करना चाहिये। इस सभा में राज्यों के प्रतिनिधि हैं और उनसे परामर्श करके हम राज्यों को उसी स्तर पर ला सकते हैं, जिस स्तर पर विधान के भाग 1 में उल्लिखित प्रान्त हैं।

अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में भी कुछ कहा गया है। अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित परामर्श-समिति ने अल्पसंख्यकों के लिये कुछ संरक्षणों की सिफारिश की है। यद्यपि भविष्य के व्यवहार का आधार संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली होगा, परन्तु इन संरक्षणों को प्रावहित किया गया है। श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि यह युग स्वेच्छा से समर्पण करने का है। सन् 1947 ई. में अंग्रेजों ने एक सौ पचास वर्ष तक अपने राज्य को स्थिर रखकर उसे स्वेच्छा से समर्पण कर दिया यद्यपि कई वर्षों से कांग्रेस लड़ाई लड़ रही थी। फिर हमने देखा कि भारतीय राज्यों के नरेशों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। मुझे विश्वास है कि यदि अल्पसंख्यक अपने संरक्षणों को समर्पण कर दें, तो उनकी स्थिति पहले से सुन्दर तथा सशक्त हो जायेगी और उन्हें बहुसंख्यकों का कोई भय न रह जाएगा। यदि वे संरक्षणों को समर्पित कर दें और बहुसंख्यकों से नाता जोड़ लें और उनसे एकप्राण होकर मिल जाये, तो भारत पहले से कहीं शक्तिशाली हो जायेगा और राष्ट्रीयता के अपने आदर्श को हम शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे।

श्रीमान्, संसार के कई सभ्य देशों के विधानों की तुलना करके हमने अपना विधान तैयार किया है। सभी विधानों की अच्छी-अच्छी बातें ऐसे परिवर्तनों के साथ सम्मिलित कर ली गई हैं, जो हमारे देश के हित में आवश्यक है। यदि हम इस विधान को सच्चाई से और निष्ठापूर्वक व्यवहार में लाये तो मुझे विश्वास है कि हमारा देश सम्पन्न होगा, सशक्त होगा और सुखी होगा और हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे। हम उसकी रक्षा ही न करेंगे, बल्कि अपने स्वर्गीय

नेता, अपने राष्ट्रपिता के उद्देश्य को भी पूरा करेंगे, जिन्होंने कहा था कि अब भारत की ऐसी स्थिति हो जायेगी कि वह अन्य पराधीन देशों को भी मुक्त करा सकेगा और सारे संसार में शांति और सम्पन्नता का साम्राज्य स्थापित कर सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि डा. अम्बेडकर ने जिस प्रस्ताव को इस सभा में उपस्थित किया है, उसे स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे कई मित्रों ने यहां आकर इस विधान के मसौदे के कार्यवाहक माननीय कानून-मंत्री को बधाइयां दी है और यदि मैं उन्हीं की भावनाओं को व्यक्त करूं तो यह उसी बात की पुनरावृत्ति होगी। परन्तु यदि मैं विद्वान् काननू मंत्री को, जिस स्पष्टता से उन्होंने विधान के मसौदे को हमारे विचारार्थ उपस्थित किया है, उसके लिये विनय तथा आदरपूर्वक बधाई न दूं, तो मैं समझता हूं कि मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हूंगा।

यहां कुछ मित्रों और आलोचकों ने विधान के सम्बन्ध में कुछ आपत्तियां की है। एक आपत्ति जो कई मित्रों ने की है, वह यह है कि हमारा विधान वृहदाकार हो गया है। प्रस्तावक महोदय ने स्वयं इसके वृहत् स्वरूप की ओर संकेत किया था। यदि हम अन्य विभिन्न विधानों के खण्डों और अनुच्छेदों की परीक्षा करें, तो हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि हमारा विधान वास्तव में वृहदाकार है। श्रीमान्, आपको विदित है कि उसमें 315 अनुच्छेद हैं, जबकि उत्तरी ब्रिटिश अमेरिका अर्थात् कनाडा के विधान में केवल 147 अनुच्छेद है, आस्ट्रेलिया के कामनवेल्थ के एक्ट में लगभग 128 अनुच्छेद है; दक्षिणी अफ्रीका के संघ के एक्ट में 153 अनुच्छेद हैं; आयरलैंड के विधान में केवल 63 अनुच्छेद हैं; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विधान में 28 अनुच्छेद हैं; सोवियत रूस के विधान में 146 अनुच्छेद हैं; स्विटजरलैंड के संघीय विधान में 123 अनुच्छेद हैं; जर्मन रीख के विधान में 181 अनुच्छेद हैं और जापान के विधान में 103 अनुच्छेद हैं। इन विधानों पर दृष्टिपात करने से यह पता लगता है कि किसी भी विधान में 200 से अधिक अनुच्छेद नहीं हैं, जब कि हमारे विधान में 315 अनुच्छेद हैं।

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

आलोचकों ने हमारे विधान के वृहदाकार के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारा देश बहुत बड़ा है और यहां 33 करोड़ लोग बसते हैं और हम संसार के मनुष्यों के लगभग पांचवें भाग के लिये विधान बना रहे हैं। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारा विधान वृहत् है। केवल यही बात नहीं है कि हम ऐसे लोगों के लिये विधान बना रहे हैं, जिनके लिये अभी तक किसी देश ने विधान नहीं बनाया है, किन्तु साथ ही हमें विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को भी हल करना है। इसके अतिरिक्त हमने अपने विधान में एक ऐसी व्यवहार-प्रथा प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिससे संघ-शासन की अपरिवर्तनशीलता और एकात्मक शासन की स्वेच्छाचारिता का निराकरण हो जायेगा। संघ-शासन और एकात्मक शासन के बीच सामंजस्य उत्पन्न करने में हमें कई एक अनुच्छेदों को स्थान देना पड़ा, जिससे हमारे विधान का आकार वृहत् हो गया।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हमारे देश की अपनी अलग समस्याएं हैं। संसार के किसी देश में भी हमारे देश के समान नरेश-शासित राज्य नहीं है और इसमें कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है। कि इन सब बातों को आधुनिक जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के अनुरूप बनाने में हमारे विधान का मसौदा बनाने वाले कुछ ही अनुच्छेदों में सब कुछ न रख सके। इसलिये हमारे विधान के वृहदाकार के सम्बन्ध में जो आपत्ति की गई है वह निराधार है।

दूसरी आपत्ति यह है कि हमने विभिन्न विधानों के प्रावधानों को अक्षरशः ले लिया है और सोवियत रूप के विधान पर हमने दृष्टिपात नहीं किया। जहां तक इस आपत्ति का सम्बन्ध है, मैं इस आदरणीय सभा का ध्यान हमारे देश और सोवियत रूस में कुछ प्रत्यक्षतः वास्तविक और आधारभूत अन्तरों की ओर आकर्षित करता हूं। हमें यह न भूलना चाहिये कि रूस का विधान एक ही दल अर्थात् रूस के साम्यवादी दल के पूरे अठारह वर्ष के शासन के उपरान्त अस्तित्व में आया। पूरे अठारह वर्ष तक शासन-सूत्र उस दल के हाथ में रहा। सन् 1917 ई. की अक्टूबर क्रांति के फलस्वरूप वह दल पदारूढ़ हुआ और सन् 1935 ई. तक उन्होंने अपने देश के लिये विधान बनाने के बारे में सोचा ही नहीं। अठारह वर्ष के कठोर

एकदल-शासन के उपरान्त उन्होंने रूस के लिये विधान बनाने की बात सोची। हमारे देश की परिस्थिति रूस की परिस्थिति से बिल्कुल भिन्न है। स्वभावतः यदि हमने रूस के विधान के कुछ ऐसे प्रावधान समाविष्ट नहीं किये हैं, जो ऊपर से न्यायोचित प्रतीत हों, तो हमें यह न भूलना चाहिये कि हमने जान बूझकर उन्हें समाविष्ट नहीं किया है। यह कहा जाता है कि रूस के विधान में अल्पसंख्यकों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान की गई है, परन्तु हम यह भूलते हैं कि उन अठारह वर्षों में जब वह कठोर दल, अर्थात् रूस का साम्यवादी दल, रूस के तथाकथित जनतंत्रात्मक गणराज्यों में शासनारूढ़ था, तो उसने रूस के इन गणराज्यों में ऐसा सशक्त शासन स्थापित कर दिया था कि अब भी यद्यपि विधान में केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करने की उनको स्वतंत्रता है, परन्तु वहां की परिस्थिति ऐसी है कि उनके लिये ऐसा सोचना भी असम्भव है। विधान बनने के बहुत पहले से ही जार्जिया, यूक्रेन आदि के गणराज्य तथा केन्द्रीय एशिया के कुछ अन्य गणराज्य उस सुगठित, सुसंगठित रूसी साम्यवादी दल के चंगुल में फंसे हुए थे, इसलिये यह कहना कि हमने रूस के विधान के अमुक-अमुक महान सिद्धान्तों पर विचार नहीं किया और उन्हें अपने विधान में समाविष्ट नहीं किया, रूस की तथा हमारे देश की परिस्थिति की उपेक्षा करना है।

श्रीमान्, यदि हम अपने देश की राजनैतिक उन्नति पर दृष्टि डालें, तो हम देखेंगे कि हमारे दल, कांग्रेस राजनैतिक दल, ने जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्नति की है। रूसी साम्यवादी दल ने बिल्कुल ही भिन्न आधार पर उन्नति की है। उसका आधार क्रांतिपूर्ण सर्वसत्तात्मक शासन का रहा है। इसलिये उन मित्रों से, जिन्होंने इस मंच पर आकर रूस के विधान की प्रशंसा की है और उसके कई खंडों को सम्मिलित न करने के लिये हम पर व्यंग किया है, यह कहा जा सकता है कि उनकी आलोचना निराधार है। आलोचना करने में उन्होंने हमारे देश की परिस्थिति पर दृष्टिपात नहीं किया।

इसके अतिरिक्त हमें यह न भूलना चाहिये कि रूस की शासन-व्यवस्था के सिद्धान्तों तथा लक्ष्य में और जिस शासन-व्यवस्था को हम अपने देश में विकसित करना चाहते हैं, उसके सिद्धान्तों तथा लक्ष्य में सारभूत अन्तर है।

श्रीमान्, रूस में व्यक्ति का अपना बहुत कम महत्त्व है। राज्य के लिये, समाज के लिये तथा अपने दल के लिये ही व्यक्ति के अस्तित्व का महत्त्व है। परन्तु

[श्री बालकृष्ण शर्मा]

अपने यहां हमने महात्मा गांधी के प्रेरणाप्रदायक नेतृत्व में एक भिन्न दृष्टिकोण से देखना सीखा है। हम व्यक्तियों को समाज के, उनके दल के तथा उनके राज्य के आधारस्तम्भ समझते हैं। व्यक्ति के महत्त्व पर इस प्रकार जोर देने से हमारी स्थिति रूस की स्थिति से भिन्न हो जाती है। इन कारणों को दृष्टि से रखते हुए यदि हमारे विधान-निर्माताओं ने रूस के विधान से कुछ नहीं लिया, तो मैं यह कह सकता हूं कि उन्होंने जानबूझकर कुछ नहीं लिया और उन्होंने यह उचित ही किया कि प्रेरणा प्राप्त करने के लिये उन्होंने जनतंत्रात्मक देशों की ओर देखा न कि रूस की ओर, जो ऊपर से देखने में तो एक जनतंत्रात्मक देश है, परन्तु वहां की शासन-व्यवस्था पर एक ही दल का कठोर प्रभुत्व रहता है।

हमारे विधान-निर्माताओं से जो तीसरी आपत्ति की गई है, वह यह है कि यह विधान केन्द्रीकरण की बहुत ही प्रबल मनोवृत्ति का परिचायक है और इसमें प्रान्तीय स्वायत्त शासन की जो थोड़ी-बहुत व्यवस्था है, वह भी सम्भव है, विधान को व्यवहार में लाने में मिट जायेगी और सम्भावना इसी की है कि सारी शक्ति संघ के राज्यों में केन्द्रीभूत हो जायेगी। परन्तु हम यह क्यों भूलते हैं कि हम, हमारा देश, हम सब केन्द्र-विघटन के असाध्य रोग से पीड़ित रहे हैं? विभिन्न अंगों की मुख्य शरीर से अलग हो जाने की यह मनोवृत्ति ऐतिहासिक है। हमें इसकी उपेक्षा न करनी चाहिये।

हम यहां राष्ट्र को एक सुगठित और सुसंगठित समाज में परिणत करने के लिये एकत्रित हुए हैं यदि हमारे विधान-निर्माता उस असाध्य रोग की रोक-थाम के लिये यत्नशील न रहे, जिससे हमारा देश शताब्दियों से पीड़ित रहा है, तो सम्भावना इसी की है कि हम भविष्य में पछतायेंगे। इसलिये मैं कहूंगा कि ये मित्र और आलोचक, जो यह सोचते हैं कि केन्द्र उस शक्ति का दुरुपयोग करेगा, जो उसे कुछ आकस्मिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये दी गई हैं, भेड़िये के आने से पहले ही 'भेड़िया', 'भेड़िया' चिल्लाने का प्रयास कर रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि विधान में ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में कोई खण्ड नहीं है। इस कारण उस पर बहुत टिप्पणी की गई है; परन्तु मैं बताना चाहता हूं कि विधान में ग्राम-पंचायतों की उन्नति के लिये प्रतिषेद नहीं है। स्थानीय स्वायत्त शासन

के इन अंगों की उन्नति के मार्ग में यह विधान बाधा नहीं डालता है। उन्हें अपने मामलों को तय करने का अधिकार होगा। इसलिये मेरे विचार से यह आलोचना भी निराधार है।

श्रीमान्, मैं एक शब्द और कहकर समाप्त करता हूं। मुझे यह देखकर दुख हुआ है कि मेरे आदरणीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और आदरणीय वयश्रेष्ठ पं. लक्ष्मीकांत मैत्र ने, हमने राष्ट्रीय भाषा के लिये जो प्रयत्न किये हैं, उन्हें सन्देह और कुछ रोष की दृष्टि से देखा है। यदि उनका यह प्रभाव हुआ है, तो मैं अपने मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से हजार बार क्षमा याचना करता हूं। मैं सभा से यह कहूंगा कि हममें से वे लोग, जो यह समझते हैं कि एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, एक माध्यम ऐसा होना चाहिये, जो अन्त में हमारे विचार-विनियम का साधन हो सके और यह भारतीय राष्ट्र भाषा हिन्दी होनी चाहिये, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम अपने मित्रों को क्षुब्ध करना चाहते हैं। यदि ये मित्र राष्ट्रभाषा को उन्नति में हमारे साथ सहयोग करेंगे, तो किसी भी प्रान्तीय भाषा को हानि नहीं होगी। राष्ट्र के लिये एक भाषा निश्चित करने के निमित्त हमारे प्रयत्नों का यह उद्देश्य नहीं है कि हम अपने मित्रों को रुष्ट करें। हम सब जगह से सहानुभूति ही चाहते है; हम यह चाहते हैं कि दक्षिण का सारा दल हमें आपत्ति से छुड़ाये और अपने इस प्राचीन देश को एक भाषा प्रदान करने के लिये, हम जो प्रयत्न करें, उसमें हमारी सहायता करे। मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): (*हिन्दुस्तानी में भाषण आरम्भ किया*)

***श्री एस. नागप्पा:** श्रीमान्, क्या मैं यह प्रार्थना कर सकता हूं कि जो सदस्य अंग्रेजी में बोल सकते हैं, वे अंग्रेजी ही में बोलें?

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** चूंकि मेरे मित्र यही चाहते हैं कि मैं अंग्रेजी में बोलू; इसलिये मैं इच्छाओं की पूर्ति नतमस्तक होकर करना चाहता हूं। यह सच है कि हिन्दी में बोलने में मुझे अधिक सुविधा होती है, परन्तु साथ ही मैं यह भी चाहता हूं कि इस सभा के सभी सदस्य मेरी बातों को समझें।

श्रीमान्, मसौदा-समिति के कार्य के सम्बन्ध में इस सभा में जो प्रशंसा-गान किया गया है, उसमें योग देने की मेरी भी इच्छा है, परन्तु मैं निर्बाध रूप से

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

यह न कर सकूंगा। जब मैं यहां कुछ मित्रों की शिकायतों को ध्यान में रखता हूं, तो मेरी यह धारणा होती है कि मसौदा-समिति ने वह सब नहीं किया है, जिसकी उससे आशा की जाती थी। कुछ सदस्य अनुपस्थित थे कुछ सम्मिलित नहीं हुए और कुछ ने काम में पूरा ध्यान नहीं लगाया। आर्थिक प्रावधानों के सम्बन्ध में हम क्या देखते हैं? समिति के सदस्यों ने मुख्य प्रश्न की उपेक्षा की है और कुछ अन्य प्रश्नों को भी हल नहीं किया है। यह विधान भारत की आत्मा का प्रतीक नहीं है। (*विधान की प्रति को दिखाते हुए उन्होंने कहा*) इस कैमरा में गांवों का स्वायत्त शासन प्रतिबिम्बित नहीं है और यह भारत के उस चित्र का सच्चा चित्रण नहीं कर सकता, जिसे कि कई लोग चाहते हैं। मसौदा-समिति के सदस्यों की बुद्धि, गांधीजी की बुद्धि और उन लोगों की बुद्धि के समान न थी, जिनका यह विचार है कि भारत के असंख्य लोग इसमें प्रतिबिम्बित हों। परन्तु जिस श्रम, उद्योग तथा योग्यता से डा. अम्बेडकर ने इस विधान पर विचार किया है उसकी प्रशांसा किये बिना मैं नहीं रह सकता। उन्होंने इस सभा के सम्मुख जो भावनाएं व्यक्त की है, उन सब से सहमत न होते हुए भी मैं उन्हें उनके भाषण के लिये बधाई देता हूं।

श्रीमान्, मेरे विचार से इस विधान की आत्मा उसकी प्रस्तावना में है और उसमें 'बन्धुता' शब्द जोड़ने के लिये मैं डा. अम्बेडकर के प्रति सहर्ष कृतज्ञता प्रकट करता हूं। अब श्रीमान्, मैं सारे विधान को प्रस्तावना की कसौटी पर कसना चाहता हूं। यदि इस विधान में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता सन्निहित है और यदि इन आदर्शों को हम इस विधान द्वारा प्राप्त कर सकते हैं, तो मेरी यह धारणा है कि यह विधान अच्छा है। यदि प्रस्तावना की इन चार बातों का उसमें अभाव है, तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि विधान अपूर्ण है। इसी दृष्टि से मैं इस विधान की परीक्षा करना चाहता हूं। मैं यह जानता हूं कि समय बहुत कम है और इसलिये मैं सब बातों पर विचार न कर सकूंगा। मैं केवल तीन या चार विषयों के सम्बन्ध में विचार करना चाहता हूं।

सबसे पहले मैं इस सभा का ध्यान ''नागरिकता'' शीर्षक भाग 2 की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। लगभग 60 लाख लोग पश्चिमी पाकिस्तान, सिंध, बलूचिस्तान और पूर्वी बंगाल से यहां आये हैं। ये लोग विदेशी नहीं हैं। यदि कानून की दृष्टि में उनको विदेशी समझा जाये, तो मैं यह कहूंगा कि ऐसा करना पाप है, क्योंकि यह स्थिति सरकार की लाई हुई है, जो देश के विभाजन के लिये

राजी हो गई। इसलिये यह कानून बनाना कि एक महीने के अन्दर उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को जिलाधीश के सामने जाकर यह घोषणा करनी होगी कि वह भारत का नागरिक है, एक प्रकार से कठोरता ही होगी। व्यवहार-दृष्टि से मैं समझता हूं कि ऐसा करना असम्भव ही होगा, क्योंकि इन 60 लाख लोगों में से अधिकांश निरक्षर है और विधान के इस प्रावधान के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है। यदि इस प्रकार का कोई निरक्षर व्यक्ति इस देश का नागरिक होने की रजिस्ट्री नहीं करा सके, जैसी कि इस अनुच्छेद के अधीन व्यवस्था है, तो उसका क्या होगा? इसलिये मेरी यह धारणा है कि भाग 2 में यह बहुत बड़ा दोष है। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि सरकार के देश-विभाजन के लिये राजी हो जाने के कारण, जो सब लोग पाकिस्तान से आ गये हैं, वे बिना परिश्रम किये हुये स्वत: भारत के नागरिक हो जाये। यदि वे घोषणा करके अपनी सुरक्षा करना चाहे, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं हैं, परन्तु यदि वे इस प्रावधान की शर्त्तों को पूरा न कर सके, तो मैं यह चाहता हूं कि हमें कोई ऐसा प्रावधान रखना चाहिये कि स्थायी निवास ही से उन्हें नागरिकता के अधिकार मिल जाये। इस पर जोर देना कि वे यहां के नागरिक तभी हो सकते हैं, जब वे जिलाधीश के सामने जाये और यह घोषणा करें कि वे भारत के नागरिक हो सकते हैं, मेरी राय में उन पर अत्याचार ही होगा।

इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि ये 60 लाख लोग बिना कोई विशेष प्रयास किये हुये ही भारत के नागरिक हो जायें।

श्रीमान्, दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में, जैसा कि आप जानते हैं, अल्पसंख्यकों की समिति में मेरा वहीं दृष्टिकोण रहा है, जो आपका है और मैं यह कहूंगा कि मुझे और आप ही के समान विचार वाले लोगों को आप ही से प्रकाश मिला है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि प्रस्तावना के तीसरे खण्ड के अनुसार समाज में स्थान और स्वतंत्रता के सम्बन्ध में सभी के प्रति समता का व्यवहार हो।

बहुसंख्यक सम्प्रदाय के सम्बन्ध में, श्रीमान्, मेरी समझ में आता है कि या तो एक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्र होंगे, या बहुसदस्यात्मक। एक सदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि यदि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति उन क्षेत्रों के लिये खड़ा होता है, तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोग उनके लिये खड़े न होने दिये जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि बहुसंख्यक

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

सम्प्रदाय के किसी व्यक्ति का वही निर्वाचनाधिकार न होगा, जो अल्पसंख्यक सम्पद्राय के किसी व्यक्ति का होगा। बहुसदस्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों में भी किसी व्यक्ति के लिये यह बहुत शर्म की बात होगी कि वे खड़े हों, अधिकतम वोटों को प्राप्त करें और फिर उनसे यह कहा जाये कि अल्पसंख्यक जाति का कोई अन्य व्यक्ति उस निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करेगा और वह नहीं करेगा; यद्यपि उसने अधिकतम वोट प्राप्त किये हों। इससे बहुत ही ग्लानि होगी और इसलिये मैं चाहता हूं कि निर्वाचनाधिकार के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों सम्प्रदायों के लोगों को बिल्कुल समान अधिकार होने चाहिये।

श्रीमान्, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय लोगों के हित-साधन में मैंने जीवनभर एक कार्यकर्त्ता के रूप में काम किया है। पिछले 35 वर्षों से मैं एक कार्यकर्त्ता रहा हूं और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सभी लोग जानते हैं कि आयव्ययक पर विचार होते समय मैंने शायद ही कभी इस सभा के सम्मुख ऐसा भाषण दिया हो, जिसमें मैंने जगहों, जमीन, धन, सम्पत्ति के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियों को तरजीह देने के लिये न कहा हो और मेरी यह धारणा है कि ऐसे सभी कानूनों को स्वीकार किया जाना चाहिये, जिससे उनका आर्थिक और सामाजिक उत्थान हो।

मैं खण्ड 299 और 300 के पक्ष में हूं, जिनमें उनके लिये पर्याप्त सुरक्षा की व्यवस्था की गई है; परन्तु जगहों को सुरक्षित करने के सम्बन्ध में मैं कहूंगा कि मैं इसका तीव्र विरोध करता हूं। जब ऐंग्लो-इंडियनों को वजन देने का प्रयास किया गया था, तो हमने इसके लिये प्रयत्न किया था कि इस वजन के प्रश्न को हमारे विधान में स्थान न मिले और अन्त में हमको सफलता मिली थी और यह निर्णय किया गया था कि ऐंग्लो-इंडियनों की संख्या में जो कमी होगी, उसकी पूर्ति मनोनयन द्वारा होगी। हमने धारा 293 और अन्य धाराएं भी रखी हैं, जिनमें यदि कोई कमी हो, तो उसे पूरा करने के लिये मनोनयन पर जोर दिया गया है। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों के सम्बन्ध में सुरक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जहां तक सम्पत्ति, सामाजिक प्रभाव और समाज में स्थान तथा अन्य बातों का सम्बन्ध है, सारी आबादी बहुत कुछ एक समान है। वास्तव में इनमें से कुछ सम्प्रदाय बहुसंख्यक सम्प्रदाय से सुसम्पन्न है। हरिजनों, अनुसूचित जातियों के बारे में यह कहा जा सकता है कि सम्पत्ति, सामाजिक

प्रभाव और समाज में स्थान के सम्बन्ध में वे अवश्य निम्न श्रेणी के हैं, परन्तु मैं चाहता हूं कि जगहें सुरक्षित करने के अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकार से ऊंचा उठाया जाये। इस अधिकार के सम्बन्ध में भी मैं इससे सहमत हूं कि यदि धारा 67 के अधीन दी हुई किसी संख्या में कमी हुई, तो हम मनोनयन का आश्रय लेंगे और यदि यह सभा समझे कि इस सम्बन्ध में उनके अधिकार की रक्षा की आवश्यकता है, तो उस संख्या की पूर्ति मनोनयन द्वारा की जा सकती है। जगहों को सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं है; परन्तु यदि कुछ को सुरक्षित रखना आवश्यक समझा जाये, तो सुरक्षा को इस प्रणाली से तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय को बहुत ग्लानि का अनुभव होगा और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को बहुत हानि उठानी पड़ेगी। कल मि. करीमुद्दीन ने सभा में बहुत अच्छे कारण बताये थे। व्यवस्थापिका सभा में सरदार गुरुमुखसिंह ने सिखों की ओर से कहा था कि उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह जानता हूं कि अगस्त सन् 1947 ई. से स्थिति बदल गई है और मेरे मुसलमान और सिख मित्र अब इस विचारधारा को अपना रहे हैं कि जगहें सुरक्षित रखने से उन्हें कोई लाभ न होगा। मैं यह चाहता हूं कि उनमें से बहुत से लोग अपने विचारों को प्रकट करें। इसलिये जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में मेरा मत यह है कि यदि उन्हें सुरक्षित रखना यह सभा आवश्यक समझे, तो उन्हें मनोनयन द्वारा ही भरा जाये। हम जानते हैं कि नौकरशाही मनोनयन की शक्ति को कैसे प्रयोग में लाई, परन्तु मैं नहीं समझता कि लोगों द्वारा निर्वाचित प्रधान इस प्रकार का भ्रम या इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर सकता हैं जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में समाज में स्थान की समानता का प्रश्न उठता है और साथ ही इस प्रकार की प्रणाली पृथक्करण की मनोवृत्ति बनाये रखती है और बहुसंख्यक सम्प्रदाय इस प्रकार विचार करने के लिये बाध्य हो जाता है कि चूंकि जगहें सुरक्षित है, इसलिये उन्हें अधिक कुछ न करना चाहिये; जिससे डा. अम्बेडकर ने अन्तिम वाक्य में जिस भ्रातृभाव का उल्लेख किया है, उसका महत्त्व ही मिट जाता है। यदि हम पृथक्करण की मनोवृत्ति का अन्त करना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम अपने ही कार्य से पृथक्करण की भावना को प्रोत्साहन न दें। इसलिये श्रीमान, मेरा यह निवेदन है कि जगहें सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

यह सभा उसी प्रस्ताव को स्वीकार करे, जिसका मैं इस सभा में प्रवेश करने के दिन ही से समर्थन करता हूं।

इस सभा में कुछ ऐसी आलोचना हुई है कि इस विधान का आकार-प्रकार अधिकतर राजनैतिक है और यह उतना सामाजिक और आर्थिक नहीं है, जितना कि इसे होना चाहिये। प्रो. के.टी. शाह ने कल अपनी भावनाओं को प्रकट किया और जहां तक मेरा सम्बन्ध है, उन्होंने जो शब्द कहे उनमें से प्रत्येक का मैं आदर करता हूं, परन्तु क्या मैं नम्रतापूर्वक निवेदन कर सकता हूं कि इस विधान की 32, 33 और 38 धाराएं इसके सामाजिक और आर्थिक अंगों ही के बारे में हैं? श्रीमान्, मैं यह नहीं चाहता कि हमारा विधान ऐसा हो कि हम उसे व्यवहार में न ला सकें। यदि इस विधान में यह कहा जाये कि राज्य आजीविका और जीवनोपयोगी सुविधाओं के लिये पूर्ण व्यवस्था करेगा और निर्देशक सिद्धान्तों में विहित अधिकार भी न्याय हैं, तो हम अपना उपहास ही करायेंगे और ऐसी बात करने को कहेंगे, जिसे हम वर्तमान परिस्थिति में नहीं कर सकते हैं मेरे विचार से वर्तमान भारत सरकार वह सब कार्य करने में समर्थ नहीं है, जिन्हें कि यूरोप के राज्य कर सकते हैं। इस विधान में बहुत विनम्रता से कहा गया है कि हम अपनी पूरी योग्यता से वह सब कुछ करने का प्रयत्न करेंगे, जिसका कि हम दावा करते हैं। कुछ सदस्यों ने अपने भाषणों में इन निदेशक सिद्धान्तों की निन्दा की है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि मैं इन निदेशक सिद्धान्तों को इस विधान का प्राण समझता हूं। वे हमारे सामने एक लक्ष्य रखते हैं और हम इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यथाशक्ति प्रयास करेंगे। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 32, 33 और कुछ अन्य अनुच्छेदों में यह प्रावधान हैं कि उन्नति का आधार सामाजिक और आर्थिक होगा। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि जीवन-स्तर उच्च किया जायेगा। परन्तु यह प्रश्न उठता है कि जीवन-स्तर उच्च किया कैसे जायेगा?

भारत एक गरीब देश है, जहां प्रत्येक मनुष्य की फी हफ्ता औसत आमदनी लगभग पांच शिलिंग है। यदि इसे तुलनात्मक दुष्टि से देखा जाये, तो संसार के अन्य देशों में लोगों की आमदनी इसकी बीस गुना है। हमारी समझ में नहीं आता कि इस प्रश्न को हम किस प्रकार हल करें। यदि हम गांवों में जाये, तो पीने

का पानी भी आसानी से नहीं मिलता। कपड़े के सम्बन्ध में आप मुझ से अधिक परिचित हैं। इन बातों के सम्बन्ध में यदि हम सरकार को किसी प्रकार उत्तरदायी बनाना चाहते हैं, तो हमें स्पष्ट रूप से कहना चाहिये कि जैसे ही सरकार पूर्णतया शक्तिसम्पन्न हो जायेगी, तो वह सिंचाई और पनबिजली की योजनाओं को कार्यान्वित करेगी और इस उद्देश्य से नदियों में बांध बनवायेगी, तथा अन्न और चारे की पैदावार बढ़ाने के लिये अन्य साधनों से काम लेगी। इसी प्रकार हम यह भी अवश्य कह सकते हैं कि सरकार को देश में अच्छे पीने के पानी की व्यवस्था करनी चाहिये। यदि आप भारत में दूध और मधु की नदियां बहाना चाहते हैं, तो हमें यह भी कहना चाहिये कि सरकार को मवेशियों की अच्छी नस्लों का संरक्षण तथा संधारण करना चाहिये, तथा उनकी उन्नति के लिये चेष्टा करनी चाहिये और साथ ही उपयोगी मवेशियों, विशेषत: दूध देने वाली गायों और बछड़ों के वध पर प्रतिबंध लगाना चाहिये। इस सभा के सम्मुख मेरा यह नम्र निवेदन है। जब मैंने इस प्रस्ताव को इस सभा के सम्मुख रखा था, तो कांग्रेस-दल ने एकमत होकर इसे स्वीकार कर लिया था। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य था कि इस पर इस सभा में विचार-विमर्श न हो सका और जब इसका समय आया, तो सभा स्थगित हो गई। मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस देश में इसकी बहुत बड़ी मांग है कि लोगों को अच्छा खाना, अच्छा पीने का पानी और दूध प्राप्त कराने के लिये कुछ कार्यवाही की जाये। मैंने ''मवेशियों की उपयेगी नस्लें और उपयोगी मवेशी'' शब्दों का प्रयोग किया है। मैं यह कहूंगा कि भारत में प्रत्येक सरकार ने और मुसलमान बादशाहों ने भी तथा अफगानिस्तान की सरकार ने और वर्तमान काल में बर्मा ने भी इस प्रश्न को कानून द्वारा हमेशा के लिये तय कर दिया है। आज बर्मा में, यहां हमारे यहां से भिन्न धर्म प्रचलित है और जहां गौ पूजनीय नहीं समझी जाती है, कानून द्वारा गौ-वध को निषिद्ध कर दिया गया है। मैं यह तो नहीं चाहता हूं, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि उपयोगी मवेशियों का वध निषिद्ध कर दिया जाये। मेरा इस सभा से यही नम्र निवेदन है और मेरे विचार से इससे किसी का मतभेद न होगा। इससे करोड़ों ऐसे लोगों को संतोष होगा, जिनका इस प्रश्न के प्रति भिन्न दृष्टिकोण है, यद्यपि मेरा वह दृष्टिकोण नहीं है।

मुझे इस सभा से एक और निवेदन करना है और वह यह है। हमने ग्राम-पंचायतों के बारे में बहुत-कुछ सुना है। इन ग्राम/पंचायतों का कार्य-संचालन किस प्रकार होगा, यह मैं नहीं जानता। हमारी एक कल्पना है और उस कल्पना

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

को हम व्यवहार में लाना चाहते हैं। मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करे कि जब नये विधान के अधीन निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित किये जायेंगे, तो वे प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र हों। केवल शहरों के या गांवों के ही निर्वाचन-क्षेत्र न हों। ऐसी प्रणाली निर्धारित की जानी चाहिये, जिससे शहर वालों और गांव वालों के बीच का अन्तर और जिन लोगों के पास बहुत कुछ है और जिन लोगों के पास कुछ भी नहीं है, उनके बीच का अन्तर हमेशा के लिये मिट जाये, ताकि हम एक राष्ट्र में परिणत हो सकें। मैं हाल में जब इंग्लैंड गया था, तो मैंने यह देखा कि जब नया कारखाना खोलने के लिये कोई अर्जी सरकार के पास आती है, तो यह कहा जाता है–''गांवों में जाइये, लंदन में हम अधिक कारखाने खोलने के लिये आज्ञा नहीं दे सकते''। मैं यह चाहता हूं कि भारत में सभी कारखाने ऐसी जगहों में खोले जायें कि गांवों के लिये या गांवों के समूहों के लिये कुछ काम-धंधे की व्यवस्था हो जाये। उद्योग-धंधों का भी शासन-प्रबंध की तरह विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। यदि हमें एक राष्ट्र बनाना है, तो शहर के लोगों और देहात के लोगों के जीवन में जो अन्तर है, उसे मिटा देना चाहिये। इस समय हम क्या देखते हैं? शहर के लोगों तथा देहात के लोगों का जीवन और जीवन की ओर उनका दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। गांवों के नजदीक जाना बहुत कठिन है। शहर के लोग गांवों में नहीं जाना चाहते। मैं यह जानता हूं कि कांग्रेस गांवों तक पहुंची है और इसके लिये उसकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह थोड़ी है। परन्तु कांग्रेस में भी कई लोग ऐसे हैं, जो गांवों में नही जाना चाहते। वे जा ही नहीं सकते, क्योंकि उनका जीवन ही भिन्न प्रकार का है। आपको ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र बनाने होंगे, जिनमें शहर भी होंगे और गांव भी और उनमें कोई अन्तर न होगा। यदि एक लाख लोगों के लिये एक निर्वाचन-क्षेत्र हों, तो उसमें शहर भी हों और गांव भी। कुछ गांव के लोग भी शहर के लोगों को अपने साथ मिलाना पसंद न करेंगे और वे इस प्रस्ताव को अपने एकाधिकार से उन्हें वंचित करने के लिये एक चाल समझेंगे परन्तु मैंने सारे देश के उच्च से उच्च हित को सामने रख कर ही इसे उपस्थित किया है। मैं यह चाहता हूं कि गांवों में और देहात में जीवनोपयोगी साधन एक समान हों और भविष्य में आर्थिक या राजनैतिक क्षेत्रों में जो भी प्रयत्न किये जाये वे मुख्यतः गांवों को शहरों के स्तर पर लाने के लिये ही हों। मुझे आशा है कि यदि आप इस प्रश्न पर विचार करेंगे, तो आप इससे सहमत होंगे कि इस विधान को ऐसे ढंग से और ऐसी

भावना से कार्यान्वित करना आवश्यक है, जिससे इस देश के निवासियों का जीवन सुखमय और आनन्दमय हो।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् मुझे एक औचित्य-प्रश्न करना है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या यह इस सभा के लिये उचित है कि डा. अम्बेडकर, जिन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है और जिनसे बहस के उपरान्त उत्तर की आशा की जा सकती है, यहां उपस्थित ही न रहें? क्या कोई व्यक्ति यहां उनकी जगह पर है?

***उपाध्यक्ष:** जी हां।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय यह जो प्रश्न अभी श्री कामत ने उठाया है, वह बिल्कुल सही मालूम होता है, क्योंकि जब तक जो मेम्बर-इंचार्ज हैं, जो माननीय सदस्य इसके अधिकार में हैं, वह इन व्याख्यानों से, जो यहां हो रहे हैं, कुछ लाभ न उठायें और उन बातों पर ध्यान न दें, जो यहां कहीं जा रही है, तब तक किसी प्रकार का वाद-विवाद होना व्यर्थ जान पड़ता है। इसलिए मेरा यह अनुरोध है कि जिस समय तक के लिए वह यहां उपस्थित न हो सकें, उस समय तक के लिए इस वाद-विवाद को स्थगित कर दिया जाये। हां, यदि वह किसी दूसरे को अधिकार दे गए हों कि वह, जो बातें कहीं जा रही हैं, उनको अंकित करता जाये और फिर उनकी सहायता कर दे, तब तो कोई हानि न होगी; अन्यथा यह सारा वाद-विवाद जो किया जा रहा है, वह हवा में ही जा रहा है और उससे कोई लाभ विधान के संशोधन में नहीं हो सकता। इसलिए आपकी स्पष्ट रूलिंग होनी चाहिये, आपका स्पष्ट आदेश होना चाहिए कि यदि बहस होनी है, तो मेम्बर-इन्चार्ज, जो इसको पाइलट कर रहे हैं, इसका संचालन कर रहे हैं, यहां मौजूद रहें या उनके कोई प्रतिनिधि यहां मौजूद रहें। जब तक यह न हो जाये, तब तक के लिए यह स्थगित कर दिया जाये।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): मि. सादुल्ला, जो मसौदा-समिति में थे, यहां उपस्थित हैं और वे डा. अम्बेडकर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

***उपाध्यक्ष:** मसौदा-समिति के कुछ सदस्य यहां उपस्थित हैं और वे डा. अम्बेडकर के स्थान पर है। मेरे विचार से इससे हमारी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं। मैं आशा करता हूं कि इससे सभा को संतोष हो जायेगा।

***रायबहादुर लाला राजकंवर** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान् इस सभा में एक पीछे बैठने वाले और एक मौन सदस्य की हैसियत से मैं जो थोड़ी बहुत बातें कहने की धृष्टता करने जा रहा हूं, उसके लिए मैं आपसे व इस सभा से क्षमा-याचना करता हूं। यदि मैं इसे अपना मत कहूं, तो यह केवल एक ऐसे विषय के सम्बन्ध में है, जो एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। यह प्रश्न राष्ट्रभाषा का प्रश्न है ओर इसे हमें हल करना है।

उपाध्यक्ष: इस पर आप ही विचार कर सकते हैं कि इसकी विस्तृत व्याख्या इस समय आवश्यक है या नहीं।

***रायबहादुर लाला राजकंवर:** मैं इसकी विस्तृत व्याख्या नहीं करूंगा। मैं कुछ आम बातों तक ही अपने को सीमित रखूंगा। इस विधान में लोगों की इच्छा और मेरा विश्वास है उनकी वाणी, अर्थात् ईश्वर की वाणी प्रतिध्वनित होगी, जैसी कि एक लैटिन की कहावत है कि लोकवाणी देववाणी है। इसका अर्थ यह है कि यह विधान की भाषा का प्रश्न नहीं है परन्तु राष्ट्र की भाषा और देश की भाषा का प्रश्न है। श्रीमान्, उपनिषदों में, जो बुद्धिमत्ता और अध्यात्म ज्ञान से परिपूर्ण हैं और जिनके बारे में शापेनहावर जैसे महान् जर्मन दार्शनिक ने कहा है कि उपनिषदों के अध्ययन से जो उदात्त प्रेरणा प्राप्त होती है, वह संसार के अन्य किन्हीं ग्रन्थों के अध्ययन से नहीं होती, तथा उनके अध्ययन से मुझे अपने जीवन में बड़ी शांति की अनुभूति हुई है और मृत्युकाल में भी इसी शांति की अनुभूति होगी, यह लिखा है।

> ''यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति।
> तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।''

जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, वैसी ही वाणी भी प्रस्फुटित होती है और जैसी वाणी प्रस्फुटित होती है, वैसे ही कार्य भी सम्पन्न होते हैं और जैसे कार्य सम्पन्न होते हैं, तद्रूप पुरुष हो जाता है। अर्थात् कार्यों से ही मनुष्य का स्वरूप निश्चित होता है। हमारे अन्तरतम विचारों की बाह्य व्यंजना ही भाषा है। एक राष्ट्रभाषा परमावश्यकीय है, क्योंकि इससे जो एकता और सुगठन हो सकता है, वह अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। प्रान्तीय सीमाओं के पुनर्निश्चयन के समान ही कुछ प्रान्तीय भाषाओं को प्राधान्य देने के लिये भी प्रयत्न किये जा रहे हैं और

उनके सम्बन्ध में मांग की गई है यह स्वाभाविक है, परन्तु किसी भाषा का किसी अन्य भाषा से विरोध न होना चाहिये। प्रान्तों को भाषाओं के आधार पर बनाया जाये या किसी अन्य आधार पर बनाया जाये या उनको वैसा ही छोड़ दिया जाये, इसका राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इसे हल करने में वर्तमान सरकार बहुत कुछ कर सकती है। अंग्रेजी भाषा को ही लीजिये, जो हमारे भूतपूर्व विदेशी शासकों के प्रभुत्व के फलस्वरूप इस वृहत् देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फैल गई। परन्तु राष्ट्रभाषा होने के लिये उसके लिये आवश्यक है कि वह केवल बुद्धिमान लोगों तक ही सीमित न रहे, बल्कि साधारण लोगों की भी भाषा हो जाये। वह ऐसी भाषा होनी चाहिये, जिसे सभी वर्गों के अधिकांश लोग बोलते हों और समझते हों। भारत के वृहत् जनसमुदाय पर दृष्टिपात करने पर हम देखते हैं कि बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तैलगू या उड़ीसा के समान प्रांतीय भाषाओं में से किसी को भी भारत के अधिकांश लोग न बोलते हैं और न समझते हैं। यदि यह दावा किसी भाषा का हो सकता है तो वह हिन्दी का ही हो सकता है, जो न केवल उत्तर भारत में बोली जाती है, बल्कि मध्यप्रान्त, राजपूताना, बिहार और अन्य विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित है; परन्तु बोलचाल की हिन्दी मनीषियों और विद्वानों की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी नहीं है। इनकी संख्या देश के उस वृहत् जनसमुदाय की तुलना में बहुत कम है, जो छोटे-छोटे, मधुर और सरल शब्दों से परिपूर्ण और शुद्ध, अमिश्रित तथा परिमार्जित हिन्दी बोलते हैं। यही भाषा अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाती है और अशिक्षित लोग औरतें और बच्चे इसका पूर्णरूप से उपयोग करते हैं और स्वतंत्रता से बोलते हैं। यद्यपि संस्कृत भारत की भाषाओं की, भारत की भाषाओं की ही नहीं, बल्कि संसार की भाषाओं की जननी है, यद्यपि वह एक सर्वोत्कृष्ट भाषा है, जिसमें वेद, उपनिषद् शास्त्र, रामायण और महाभारत तथा चिरजीवी गीता लिखे गये हैं और यद्यपि महान् प्राच्य-पोषक सर विलियम जोंस के शब्दों में, ''संस्कृत ग्रीक से अधिक उत्कृष्ट है, लैटिन से अधिक वृहत् है और इटालियन से अधिक मधुर है,'' परन्तु वह भाषा साधारण लोगों की भाषा नहीं है और इसलिये यह उचित नहीं है कि हिन्दी भाषा की प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिये हम उससे शब्द लें। इसके अतिरिक्त लैटिन, ग्रीक और हेब्रू भाषाओं की तरह वह कई शताब्दियों से एक मृत भाषा रही है और संसार के सबसे बड़े व्याकरणाचार्य पाणिनि की आश्चर्यजनक और अद्वितीय अष्टाध्यायी के होते हुए भी संस्कृत को सीखना सबसे कठिन है।

[रायबहादुर लाला राजकंवर]

सरलता ही राष्ट्रभाषा की कसौटी होनी चाहिये और वह प्रत्येक देशवासी के समझने के योग्य होनी चाहिये। अब यह सभी मानते हैं कि संस्कृत के अक्षर संसार की अन्य लिपियों की तुलना में सबसे उत्कृष्ट और वैज्ञानिक हैं तथा अन्य अक्षरों की अपेक्षा बहुत ही प्राकृतिक भी हैं। उदाहरणार्थ सबसे पहला अक्षर 'अ' है। जब इस अक्षर का उच्चारण किया जाता है, तो मुंह स्वतः खुल जाता है और जो ध्वनि निकलती है, वह स्वाभाविक ध्वनि होती है। इसी प्रकार जब संस्कृत वर्णमाला का अन्तिम अक्षर अर्थात् 'म' उच्चारण किया जाता है, तो मुंह स्वतः बन्द हो जाता है, जिसका अर्थ यह है कि इसका अन्तिम अक्षर होना ठीक ही है; यद्यपि मुझे स्मरण है कि 'म' एक प्रकार से देवनागरी लिपि का अन्तिम अक्षर नहीं है, क्योंकि इसके बाद ऐसे अक्षर आते हैं जैसे कि 'य' 'र' 'ल' 'व', परन्तु ये अन्य अक्षरों के रूपान्तर ही है। उदाहरणार्थ 'य' 'इ' का रूपान्तर है, 'र' 'ऋ' का रूपान्तर है, 'ल' 'ऌ' का रूपान्तर है और 'व' 'उ' का रूपान्तर हैं। चूंकि संस्कृत की वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है, इसलिये हिन्दी, जिसे इस देश के अधिकांश लोग बोलते हैं देवनागरी लिपि में ही लिखी जानी चाहिये। (*हर्षध्वनि*) कुछ समय पहले बुनियादी अंग्रेजी का स्वरूप निशिचित करने के लिये एक आन्दोलन हुआ था। यदि इसी प्रकार का कोई उपाय हिन्दी के सम्बन्ध में भी किया जाये, तो ऐसे लोग, जो इस समय न हिन्दी बोलते हैं, और न लिखते हैं, कम से कम समय में आसानी से हिन्दी सीख सकेंगे। फ़ारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू का अभी तक जो स्थान रहा है, और जो अब भी है, उसे दृष्टि में रखते हुए तथा इसे भी दृष्टि में रखते हुए कि वह हमारे साढ़े तीन या चार करोड़ मुसलमान भाइयों की भाषा है, जो सारे देश में फैले हुए हैं, और इसको भी दृष्टि में रखते हुए कि इस भाषा की लिपि की यह खूबी है कि वह एक प्रकार की आशुलिपि है, मेरे विचार से यह उचित ही होगा कि हम उर्दू की ओर भी कुछ ध्यान दें, परन्तु वास्तव में किसी कारण से भी वह राष्ट्र की प्रधान भाषा नहीं हो सकती है। राष्ट्रीय और सरकारी भाषा तो अवश्य ही देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी होनी चाहिये, परन्तु दूसरी भाषा मेरे विचार से उर्दू होनी चाहिये, क्योंकि वह एक प्रकार की आशुलिपि है, क्योंकि अन्य भाषाओं की तुलना में उसे लिखने में बहुत कम समय लगता है और वह जगह भी कम लेती है। उदाहरणार्थ 'मुन्तजिम' शब्द को लीजिये, जो उर्दू में एक संयुक्ताक्षर के रूप में लिखा जाता है; परन्तु यदि

आप उसे देवनागरी हिन्दी अक्षरों में लिखिये या रोमन में लिखिये, तो सात या आठ अक्षर काम में लाने होंगे। इसी प्रकार 'मुन्ताजिर', 'मुन्तशिर', 'मुन्तखिब' के समान सैंकड़ों ऐसे अक्षर-समूह हैं, जो इस समय एक ही शब्द के रूप में लिखे जाते हैं। इसलिये मेरे विचार से इसको दृष्टि में रखते हुए कि इस समय इस देश में काफी लोग उर्दू बोलते हैं, विशेषतया दिल्ली, आगरा, लखनऊ और अन्य बड़े शहरों में तथा दिल्ली के चारों ओर देहात में और उत्तरी भारत की बड़ी-बड़ी आबादियों में और इसे भी दृष्टि में रखते हुए कि उर्दू लिपि के आशुलिपि होने के कारण कई फायदे हैं, मेरा यह निवेदन है कि हमें उसे देश की दूसरी भाषा का स्थान देना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि हम उसे दूसरी भाषा का स्थान देंगे, तो इसका अर्थ मुसलमानों के प्रति सद्दिच्छा प्रकट करना होगा जिनकी संख्या, जैसा कि मैं बता चुका हूं, साढ़े तीन या चार करोड़ से कम नहीं है। एक ऐहिक राज्य में इस प्रकार की सद्दिच्छा प्रकट करने से लाभ ही होगा। देश के विभाजन और उसके उपरान्त जो ज्वाला धधक उठी, उनके दुष्परिणामों का चाहे हमें जितना भी ध्यान रहे, हमें यथार्थ को देखना चाहिये; क्योंकि आखिर हम क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना से तो निर्माण नहीं कर सकते। यद्यपि मैं इस समय भारत के एक सुदूर भाग, अर्थात् उड़ीसा राज्यों का प्रतिनिधित्व करता हूं, परन्तु मैं एक पंजाबी हूं और कई पंजाबियों की तरह मुझे भी देश विभाजन से कई प्रकार से बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, परन्तु इस कारण हमें देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को न भूलना चाहिये। हमें यह भी न भूलना चाहिये कि राष्ट्रपिता ने अपने जीवन-काल में स्वतंत्र और निरपेक्ष रूप से अपना मत हिन्दुस्तानी के पक्ष में प्रकट किया था और इस मत-प्रकाश के कारण उन्हें कभी भी ग्लानि का अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत उन्होंने वास्तविक स्थिति के महत्त्व को समझा और यह भी समझा कि उनका मत कितना सच्चा और आवश्यक है।

मेरी एक विनम्र सम्मति और है और वह यह है कि अपने विधान को बनाने में हमें परमात्मा से उसके आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। किसी भी बड़े उत्सव या महायज्ञ को आरम्भ करते समय प्रत्येक गृहस्थ इस प्रकार की प्रार्थना करता है। नवीन भारत में, जिसने इतने कष्ट के उपरान्त जन्म लिया है, इससे महान् यज्ञ और क्या हो सकता है? इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस विधान के आरम्भ में हमें यह कहना चाहिये कि इस पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के

[रायबहादुर लाला राजकंवर]

लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं और प्रस्तावना के अन्त में भी हमें कुछ ऐसे शब्द रखने चाहिये, जैसे ''ईश्वर हमारा सहायक हो''। जब रुडयार्ड किप्लिंग के देश के सम्मुख एक महान् संकट उपस्थित हुआ था, तो उसने प्रार्थना करते हुए कहा था: ''देवाधिदेव, अभी हमारे साथ रहो, ताकि हम भूलें नहीं, हम भूलें नहीं''। मुझे विश्वास है कि मेरे इस सुझाव पर यह आदरणीय सभा विचार करेगी।

अपनी जगह पर जाने के पहले, मसौदा-समिति के सभापति तथा माननीय कानून मंत्री डा. अम्बेडकर ने विधान का मसौदा प्रस्तुत करते समय जो उत्कृष्ट भाषण दिया, उसके प्रशंसा-गान में मैं भी योग देना चाहता हूं। उसमें जिस सरलता और स्पष्टता से विचार-व्यंजना हुई है, वह अद्वितीय है। वे और उनके सहयोगियों ने जिस परिश्रम से यह विधान का मसौदा तैयार किया है, उसके लिये वे कृतज्ञता के पात्र हैं, श्रीमान, मैं आपको अपना मत प्रकट करने के लिये, मुझे यह अवसर देने के लिये, धन्यवाद देता हूं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, इस प्रातःकालीन अधिवेशन के अवसान काल में मुझसे बोलने के लिये कहा गया है। इसलिये मैं अपने भाषण को यथाशीघ्र समाप्त करने का प्रयास करूंगा। इस सभा के विचारार्थ मैं कुछ थोड़ी सी बातें ही कहना चाहता हूं। पहली बात यह है कि विधान के सारे मसौदे में कहीं भी देश की आर्थिक स्वतंत्रता के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। जब हम इस देश की राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये संग्राम कर रहे थे, तो हमारे नेताओं ने कई बार यह कहा था कि हम इस देश के लिये ऐसा विधान बनायेंगे, जिससे देश में आर्थिक स्वतंत्रता की व्यवस्था हो सकेगी। परन्तु मुझे खेद है कि इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। इसमें जनसाधारण के लिये कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे वे अपने भविष्य के बारे में निश्चित हो सकें। विधान के इस मसौदे में कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं है, जिससे भविष्य में अपने विकास के लिये उन्हें पूर्ण अवसर मिलता हो। विधान में सब से प्रथम इसकी व्यवस्था होनी चाहिये कि सभी भूमि, कल-कारखाने, उत्पादन के अन्य साधन तथा उत्पादित वस्तुओं पर लोकहितार्थ राज्य का नियंत्रण तथा स्वामित्व होगा।

दूसरी बात यह है कि राज्य को प्रत्येक स्त्री और पुरुष की क्षमता और योग्यता के अनुसार उसे काम देना चाहिये और लोगों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार सामान देना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि लोगों की आवश्यकतानुसार वस्तुओं के उत्पादन का निश्चयन तथा नियमन होना चाहिये। विधान के मसौदे में किसी निश्चित अवधि में सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का आश्वासन नहीं दिया गया है और इसमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि इस देश में प्रत्येक स्त्री और पुरुष को काम दिया जाना चाहिये।

मेरा दूसरा सुझाव नागरिक स्वतंत्रता के बारे में है। विधान के मसौदे में यह व्यवस्था है कि राज्य के हित में कोई व्यक्ति बिना मुकद्दमा चलाये हुए ही हिरासत में रखा जा सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि 'राज्य के हित में' शब्दों का क्या अर्थ है। आपने देखा कि जनवरी के बाद पिछले कई महीनों में बिना मुकद्दमें के हिरासत में रखने का क्या फल हुआ है। कई उच्च न्यायालयों में यह समझा गया कि कुछ मामलों में प्रान्तीय सरकारों ने हिरासत के लिये जो आज्ञाएं दी थीं, वे गैर-कानूनी थी। जब विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रयोग करने के लिये इस देश का कानून वर्तमान है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि बिना मुकद्दमे के हिरासत में रखने के लिये कोई व्यवस्था ही क्यों हो? ब्रिटिश राज के समय हमने इसके विरुद्ध संग्राम किया था और मेरी समझ में नहीं आता कि अब भी यह व्यवस्था इसी प्रकार क्यों रहने दी जा रही है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करते समय इस सभा ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि इस दृष्टिकोण को बदलना चाहिये और विधान के मसौदे में इस प्रकार का जो प्रावधान रखा गया है, उसमें संशोधन करना चाहिये।

मेरा तीसरा सुझाव राज्यों के सम्बन्ध में है, जिनके नरेशों ने अपने अधिकार-क्षेत्र तथा शक्तियां केन्द्रीय सरकार को सौंप दी है। इस सम्बन्ध में विधान के मसौदे में जो प्रावधान रखे गये हैं, उनका उन विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिन पर विचार करने के लिये मसौदा-समिति से कहा गया था। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदा-समिति अपने निर्देश-पदों के आगे क्यों चली गई और उसने राज्यों के लोगों की इच्छाओं की क्यों उपेक्षा की, जबकि ये राज्य अब भारत सरकार

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

के शासन के अधीन हैं और इन्होंने एक ऐसे विधान को स्वीकार किया है, जिसकी राज्यों के लोगों ने मांग भी नहीं की है और जिसे वे पसंद भी नहीं करते हैं। इसलिये मेरा यह अनुरोध है कि अनुच्छेद 212 में, जो उन राज्यों के सम्बन्ध में भी लागू किया गया है, जो प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं, संशोधन किया जाये और इस सम्बन्ध में लोगों की भावनाओं का आदर किया जाये। निस्सन्देह संशोधन यथासमय उपस्थित किये जायेंगे और मुझे आशा है कि यह सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं सिफारिश करता हूं कि विधान के मसौदे पर इस सभा में विचार किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों को सहर्ष यह सुनाना चाहता हूं कि अध्यक्ष महोदय इसके लिये राजी हो गये हैं कि इस सभा की इच्छानुसार हम एक दिन और अर्थात् सोमवार को सामान्य रूप से विचार-विमर्श करें।

इसके उपरान्त सभा तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिये स्थागित हो गई।

भोजनोपरान्त तीन बजे उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में सभा पुनः समवेत हुई।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या कृपा करके आप यह आदेश...

***उपाध्यक्षः** क्या कृपया माननीय सदस्य अपना आसन ग्रहण करेंगे?

प्रतिज्ञा ग्रहण

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर अपने हस्ताक्षर किये:

श्री रतनलाल मालवीय (मध्यप्रांत और बरार स्टेट्स)

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव—(*जारी*)

***उपाध्यक्षः** अब हम फिर वाद-विवाद आरम्भ करते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या कृपाकर आप इस बात का आदेश देंगे कि माननीय डा. अम्बेडकर के उस भाषण की एक-एक प्रति, जो कि उन्होंने विधान सम्बन्धी मसौदे को पेश करते हुये यहां दिया है, यथाशीघ्र सदस्यों को दे दी जाये?

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि माननीय डा. अम्बेडकर के भाषण को अभी साइक्लोस्टाइल करना है। यथाशीघ्र यह काम पूरा हो जायेगा और सम्भवतः या तो आज ही शाम को या कल सवेरे इसकी प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध हो जायेंगी।

अब हम वाद-विवाद प्रारम्भ करते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांतः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय...

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या इस प्रस्ताव पर आपको दो बार बोलने की अनुमति मिली है?

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः नहीं। पहले मैं सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन पर बोला था। डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर तो मैं अभी बोला ही नहीं।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं, उन पर विचार करने के लिये हम, आज समवेत हुये हैं प्रारम्भ में ही मैं विद्वान डा. अम्बेडकर को, जिन्होंने यह प्रस्ताव हमारे समक्ष उपस्थित किया है, बधाई देता हूं। जो भाषण उन्होंने यहां दिया है, उसे मैंने कई बार पढ़ा है और मैं समझता हूं कि अपने विधान के सम्बन्ध में यह एक बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है। निश्चय ही मेरा मत है कि विधान का इससे और योग्य पक्ष प्रतिपादन हो नहीं सकता था। किन्तु विधान में जिन सिद्धान्तों को समाविष्ट किया गया है, उनके सम्बन्ध में मैं कुछ जरूर कहना चाहता हूं।

श्रीमान्, जैसा कि स्वयं डा. अम्बेडकर ने कहा है, इस विधान में इंग्लैंड की प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था को एक आदर्श माना गया है और अमेरिकन शासन-व्यवस्था को नापसन्द किया गया है। मैंने दोनों ही व्यवस्थाओं की तुलना की और फिर यह समझने की कि दोनों में कौन ज्यादा अच्छी है, कोशिश की है। मेरा अपना मत यह है कि हमारे देश को इस समय स्थिर शासन की आवश्यकता है। मैं तो समझता हूं कि हमारी पहली आवश्यकता यही है कि हमारी हुकूमत एक स्थायी हुकूमत हो। इसलिये मेरी समझ से हम लोगों को वैसी ही शासन-व्यवस्था अपनानी चाहिये थी, जैसी कि अमेरिका में प्रचलित है। प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुना हुआ प्रधान राष्ट्र का प्रमुख हो और उसे इस बात का अधिकार होना चाहिये कि शासन-संचालन के लिये वही अपने अधिशासी वर्ग को चुने। न्याय-व्यवस्था अधिशासी वर्ग से बिल्कुल स्वतंत्र होनी चाहिये। आज राष्ट्र के लिये सबसे जरूरी बात यह है कि उसकी हुकूमत स्थायी हो। विलगाव की प्रवृतियां अभी से ही दिखाई देने लगी हैं।

भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने की तथा उनके पुनः विभाजन की मांग हो रही है। केन्द्र तथा इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किस प्रकार किया जाये, इस पर जो विवाद हुए हैं, उन्हें हम देख ही चुके हैं। यह सारी प्रवृत्तियां स्वाभाविक हैं। किन्तु यदि हमने अपना विधान अमेरिकन प्रणाली के आधार पर बनाया होता, तो मैं समझता हूं कि उससे हमारी आवश्यकताएं और अच्छी तरह पूरी हो जाती। इसलिए एक बुनियादी बात में हमारा मा. डा. अम्बेडकर से मतभेद है, जिन्होंने कि ब्रिटिश प्रणाली को पसन्द किया है। अवश्य ही ब्रिटिश पद्धति खूब काम करती है। किन्तु यह सात सौ वर्षों के अनुभव और शिक्षा के फलस्वरूप

उसमें यह बात उत्पन्न हो पाई है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश-जीवन की दो अपनी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं, जिनसे इस पद्धति को चालू रखने में, अंग्रेजों को सहायता मिलती है। वहां विलगाव की प्रवृत्तियां वर्तमान नहीं है और राजा के प्रति उनकी निष्ठा, एक ऐसा प्रबल बंधन है, जो उन्हें सदा एक किये रहता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक अंग्रेज के हृदय में अपने विधान के प्रति एक संस्कारजन्य सम्मान है। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि अंग्रेजी प्रणाली की अपेक्षा जिसकी यहां सिफारिश की गई है, हमारे देश के लिए अमेरिकन-प्रणाली अधिक अच्छी होगी। अमेरिकन-प्रणाली के अन्दर घूसखोरी कम होगी और हम ज्यादा अच्छी तरह अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर सकेंगे।

उपाध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायत सम्बन्धी प्रथा की निन्दा की है, जो भारत में पहले प्रचलित थी और जिसे हमारे बुजुर्गों ने अपने विधान के लिए एक आदर्श आधार माना था। मैं अभी-अभी महात्मा गांधी की वह वक्तृता पढ़ रहा था, जिसे उन्होंने सन् 1931 में लंदन की गोलमेज सभा में दिया था। संघीय विधान-मण्डल की निर्वाचन-पद्धति के सम्बन्ध में वह बोल रहे थे। इस प्रसंग में उन्होंने इस बात की सिफारिश की थी कि निर्वाचन के लिए गांवों को ही इकाई माना जाये। वस्तुतः उन्होंने ग्राम-पंचायतों को ही आधारभूत महत्त्व दिया था। उन्होंने कहा था कि भारत की वास्तविक आत्मा ग्रामों में ही वास करती है। मुझे आन्तरिक दुख हुआ कि डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में ऐसा मत व्यक्त किया। मुझे इस बात का विश्वास है कि सभा का कोई भी सदस्य ऐसा मत नहीं रखता है, जो कि डा. अम्बेडकर ने अभी व्यक्त किया है। जरा देखिये, डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में क्या कहा है। आपने फरमाया है:

''देश के भाग्यनिर्माण में उन्होंने क्या भाग लिया है इसका वर्णन भी मेटकाफ ने स्वयं किया है। वह कहता है:

'कितने ही राजवंश आए और गये, कितनी ही क्रांतियां हुईं। हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, अंग्रेज—सभी बारी-बारी से देश के मालिक बने, किन्तु यहां की ग्राम-पंचायतें सदा ज्यों की त्यों बनी रही। जब-जब युद्ध हुए, संकट आए, इन्होंने अपने को हथियारबन्द किया, अपनी किलेबन्दी की।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

विरोधी सेना जब इनके प्रदेश में पहुंची, तो इन्होंने अपने मवेशियों को चहारदीवारी में इकट्ठा कर दिया और शत्रु को बिना रोके बढ़ जाने दिया।'

हमारी ग्राम-पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है। इसे जानते हुए हमें उनके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है? यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल-पुथल के होते हुए भी ये जीवित रह गयी। किन्तु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य? प्रश्न तो यह है कि किस स्तर पर ये जीवित रही? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर ये जीवित रही। मेरा मत है कि यह ग्राम-पंचायतें ही भारत की बर्बादी का कारण रही है। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता की, साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं हमारे ग्राम हैं क्या? कूप-मण्डूकता के परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि विधान के मसौदे में ग्रामों को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।''

मुझे इस बात का निश्चय है कि सभा के बहुसंख्यक सदस्य, ग्राम-पंचायतों के सम्बन्ध में, उनकी राय से सहमत नहीं हैं। मैंने ग्रामों में काम किया है और कांग्रेस-ग्राम-पंचायतों की कार्यशैली का मुझे गत पच्चीस वर्षों से अनुभव है और इस नाते मैं कह सकता हूं कि उन्होंने इस सम्बन्ध में जो चित्र रखा है, वह बिल्कुल ही काल्पनिक है। उन्होंने बिल्कुल ही गलत तस्वीर आपके सामने रखी है। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि इन ग्राम-पंचायतों को, अगर हम वह समूचा प्रकाश तथा ज्ञान दे सकें, जिसे देश ने और दुनियां ने आज प्राप्त कर रखा है, तो ये ग्राम हमारे इतने शक्तिशाली अंग बन जायेंगे कि समूचे देश को एक बनाये रखने में तथा रामराज्य का जो हमारा आदर्श है, उसकी प्राप्ति में ये सफल सहायक सिद्ध होंगे। सोवियत विधान का आधार वस्तुतः ग्राम्य इकाइयां ही हैं, जिन्हें वहां 'ग्राम-पंचायत' का नाम दिया गया है। मेरा अपना मत यह है कि रूस की ग्राम-पंचायतों की तरह हमारी ग्राम-पंचायतें सुशासन के लिए एक आदर्श बन सकती हैं। मैं समझता हूं कि विधान में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रस्तुत मसौदे के अंतर्गत ऊपर वाली सभा का चुनाव, अव्यवहृत रूप से प्रान्तीय विधान-मंडल करेंगे। मैं समझता हूं कि इसका चुनाव और व्यापक मताधिकार के

आधार पर होना चाहिए तथा ग्राम-पंचायतों के द्वारा ही ऊपर वाली सभा का चुनाव होना चाहिए। यह जो पद्धति प्रस्तावित की गई है कि ऊपर वाली सभा का चुनाव प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं द्वारा हो, यह बिल्कुल गलत है। अगर ग्राम-पंचायतें ऊपर वाली सभा का चुनाव करें, तो इस तरह जो सभा बनेगी, वह अधिक प्रतिनिधायी होगी। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि जब तक गांवों को हम और अधिक दायित्व नहीं प्रदान करते, तब तक उनकी समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं हो सकता।

तीसरी बात जो मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, वह है प्रादेशिक राज्यों के सम्बन्ध में। प्रान्तों के लिए तथा देशी रियासतों के लिए दो तरह का अलग-अलग विधान हो, इसके लिए डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है, उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं। मैं समझता हूं कि रियासतों को भी प्रान्तों की पंक्ति में लाना चाहिए। मुझे आशा है कि रियासतों के प्रतिनिधि, जो यहां समवेत हैं, यही पायेंगे कि प्रान्तों के समान विधान रखने में उनको अधिक लाभ है। गवर्नरों की जगह अपने राजा को वे अपना वैधानिक प्रमुख बना सकते हैं। बहुतेरी छोटी-छोटी रियासतों ने तो आपस में मिलकर अपनी एक बड़ी इकाई बना ली है। जो रियासतें बिल्कुल ही छोटी है, वह अपने सन्निकटवर्ती प्रान्तों में मिल गई हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि विधान में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर कोई रियासत प्रान्त की पंक्ति में आना चाहती हो, तो प्रान्तीय विधान ही उस पर भी लागू होगा। आशा है कि जब तक विधान पास होगा अधिकतर रियासतें प्रान्तों की पंक्ति में आना स्वीकार कर लेंगी।

श्रीमान्, मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने कहा है, दुनियां में कहीं भी मौलिक अधिकार सर्वथा सम्पूर्ण नहीं हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि अपने मौलिक अधिकारों को और स्पष्ट असंदिग्ध रूप में रखना चाहिए था। मैं समझता हूं कि इस मन्तव्य में कि मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनसे विधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का बहुत सा सार अपहृत हो जाता है। बहुत कुछ सच्चाई है। मेरी समझ से इन अनुच्छेदों में सुधार होना चाहिए।

अब एक बात राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में कहूंगा। मेरी समझ से विधान की भाषा के सम्बन्ध में एक स्वतंत्र खण्ड होना चाहिए, जिसमें कि आयरिश विधान के नमूने पर राष्ट्रभाषा के बारे में खण्ड रखा गया हो। निजी तौर पर मेरा यह मत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए और वह देवनागरी लिपि में लिखी जानी चाहिए। इसी प्रकार मेरा यह मत है कि विधान में राष्ट्रीय झंडे के स्वरूप का भी उल्लेख होना चाहिए। इसका रंग क्या हो, आकार क्या हो, यह सारी बातें विधान में आनी चाहिए। मैं श्री गोविन्ददास सेठ के इस कथन से पूर्णतः सहमत हूं कि भारतीय संघ में गौवध बन्द कर देना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा समझता हूं कि तीस करोड़ जनता की भावना का हमें आदर करना चाहिए। मेरी समझ से विधान में एक ऐसा अनुच्छेद होना चाहिए, जो गौवध पर प्रतिबंध आरोपित करता हो। मेरी राय में जनता जैसी भी है, हमें उसे अपनाना होगा और उसकी भावनाओं का भी आदर करना होगा। इसलिए मेरा मत है कि हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने विधान में हमें संशोधन करना चाहिए।

अन्त में श्रीमान्, मसौदा-समिति को मैं धन्यवाद देता हूं कि उसने एक ऐसा सुन्दर विधान हमें प्रदान किया है। मैं समझता हूं कि जो सुझाव मैंने रखे हैं, संशोधनों पर विचार करते समय उन पर भी विचार किया जायेगा और देश के विधान का जो अन्तिम स्वरूप निश्चित होगा, उसमें उनको स्थान मिलेगा। इन शब्दों के साथ श्रीमान्, सभा से सिफारिश करता हूं कि वह प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करे।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, पूर्ववक्ताओं की भांति मैं भी मसौदा-समिति को और विशेषतः उसके सभापति डा. अम्बेडकर को बधाई देता हूं कि इस मसौदे के प्रस्तुत करने में इन लोगों ने इतना परिश्रम किया। किन्तु उन्होंने अपने भाषण में कुछ ऐसी बातें भी कहीं हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हूं। उन्होंने यह कहा है: ''हमारे ग्राम क्या हैं? कूप मण्डूकता के ये परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं,'' मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि इस सभा का एक माननीय सदस्य, हमारी राष्ट्रीय सरकार का एक माननीय मंत्री, हमारे ग्रामों के सम्बन्ध में ऐसी हेय धारणा रखता है। मैं तो कहूंगा कि हमारे कालेज और स्कूलों में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार होने से ग्रामों से हमारा सम्पर्क ही जाता रहा था। किन्तु लगभग तीस वर्ष हुए कि हमारे नेता ने—पूज्य महात्मा गांधी ने—देश के बुद्धि सम्पन्न व्यक्तियों को गांवों को वापस जाने की सलाह दी। गत तीस वर्षों से हम गांवों में जाने लगे हैं और हमने अपने

को ग्रामीणों में मिला सा दिया है। डा. अम्बेडकर की आलोचना के उत्तर में मैं कहूंगा, हमारे ग्रामों में कूप मण्डूकता नहीं है। अज्ञान—अंग्रेजी भाषा का एवं अपनी अन्य लिखी भाषाओं का अज्ञान—वहां जरूर है, और इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है, वह सरकार, जो हमारे पहले यहां थी और जिसने हमारी शिक्षा-पद्धति को नष्ट कर दिया था। जहां तक प्रकृतिज्ञान का सम्बन्ध है, शास्त्रों और पुराणों से प्राप्त होने वाले नीतिज्ञान का सम्बन्ध है, मैं कहूंगा कि हमारे आधुनिक शहरों से कहीं अधिक ज्ञान और बुद्धि हमारे गांवों में वर्तमान है।

मुझे नगरों से घृणा नहीं है। मैं नगरों में रहा हूं। दो महादेशों में भी मैं रहा हूं, किन्तु दुर्भाग्य से भारतीय नगर अन्य देशस्थ नगरों से कहीं बिल्कुल भिन्न हैं। हमारे नगरों में रहने वाले लोग ग्रामीणों से, उनके जीवन से बहुत दूर हैं और यही कारण है कि हम ऐसा समझते हैं कि गांवों में कोई अच्छाई है ही नहीं। अब यह विचार बदलता जा रहा है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि कांग्रेस-परिधि के बाहर यह विचार बदल रहा है या नहीं; पर यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि कांग्रेस-परिधि में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में, गांवों का ख्याल सबसे पहले है। इसलिये मैं डा. अम्बेडकर से अपील करता हूं कि इस मसले पर वह पुनर्विचार करें और ग्रामों को वही स्थान दें जो उनको मिलना चाहिये; क्योंकि निकट भविष्य में हमारे ग्राम वही महत्त्व प्राप्त करने वाले हैं, जो पूर्वकाल में उन्हें प्राप्त था।

अब मैं विधान के मसौदे की ओर आता हूं। इस बात में कि केन्द्र को अधिक अधिकार दिये जाये। मैं डा. अम्बेडकर से पूर्णतः सहमत हूं; क्योंकि वर्तमान समय में हमारे लिए एक शक्तिशाली केन्द्र अत्यावश्यक है। हम भले ही यह कहें कि हमारे देशवासियों की संस्कृति के जो मूलभूत तत्त्व है, वह देश के विभिन्न सभी प्रान्तों में एक समान हैं पर वस्तुस्थिति यह है कि देश की जनता में विभिन्नता है और देश में तरह-तरह की विघ्नात्मक शक्तियां वर्तमान है, जो इस स्थिति से कि अंग्रेज यहां से चले गये हैं, लाभ उठाकर आज सिर उठाने की कोशिश कर रही हैं। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारा केन्द्र खूब शक्तिसम्पन्न हो जिससे कि देश के विभिन्न लोगों को मिलाकर, देश को एक राष्ट्र का रूप

[श्री सारंगधर दास]

दे सकें। इस सम्बन्ध में मैं आपसे आग्रह करूंगा कि भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना के विचार को पांच या दस वर्षों के लिये स्थगित रख दें। यद्यपि मैं एक ऐसे प्रान्त से आ रहा हूं, जहां हम लोग यह समझते हैं कि हमारे प्रान्त के साथ अन्याय किया गया है, किन्तु भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना हो, इस विचार के कारण पड़ौसी प्रान्तों के निवासियों में बड़ी ही कटुता पैदा हो गई है और इसी कारण मैं आपसे यह आग्रह कर रहा हूं। कटुता लाने का यह समय नहीं है। हम लोग यही चाहते हैं कि पड़ौसी प्रान्तों में पारस्परिक सद्भाव रहे। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि भाषावार प्रान्तों का विचार कम से कम पांच वर्षों के लिये तो स्थगित ही कर दिया जाये। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है, मैं जानता हूं और देश का प्रत्येक स्वातंत्र्य प्रेमी नागरिक जानता है कि हमारी एक राष्ट्रभाषा अवश्य होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में भी हमारे पास विभिन्न प्रान्तीय भाषायें हैं, जिनमें कुछ तो बहुत ही विकसित हो गई हैं और सम्पन्न स्थिति में आ गई हैं और कुछ ऐसी है, जो पिछड़ी हुई हैं। इस तरह विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के बीच एक स्पर्धा उत्पन्न हो गई है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें याद रखना होगा कि हमें एक ऐसी भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाना होगा, जिसे देश के अधिकांश निवासी बोल और समझ सकते हों। हिन्दी के सिवाय अन्य कोई भी भाषा इस कसौटी पर ठीक नहीं उतर सकती। हिन्दी भाषा का आधार संस्कृत है और चूंकि विभिन्न प्रान्तों में कुछ न कुछ संस्कृत सभी लोग पढ़ते हैं; यद्यपि इतना नहीं, जितना कि हमारे बुजुर्ग पढ़ा करते थे; इसलिए हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। हमारी प्रादेशिक भाषाओं का आधार भी संस्कृत ही है। उसे हमारे प्रान्त में साधु-भाषा कहते हैं; अर्थात् विद्वानों की भाषा यह है। उड़िया के रूप में बोली जाने वाली इस साधु-भाषा को हिन्दी वाले भी समझ सकते हैं और इसी प्रकार इसे पंजाबी भाई भी समझ सकते हैं इसी तरह उड़ीसा के लोग भी हिन्दी समझ लेते हैं, बोल वह भले न सकते हों। यही बात बंगाल और महाराष्ट्र आदि के साथ भी है। इस दृष्टि से देखते हुए मुझे आश्चर्य होता है कि अन्य अहिन्दी भाषी मित्र, खासकर के दक्षिण भारत के बन्धु हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की जो मांग है, उसको भाषा सम्बन्धी साम्राज्यवाद समझते हैं। मैं नहीं देखता कि इसमें भाषागत साम्राज्यवाद की क्या बात है। अगर दक्षिण भारत के लोग अंग्रेजी के सिवाय अन्य

कोई भाषा नहीं बोल सकते हैं, तो क्या इससे उनका यह अभिप्राय है कि मद्रास प्रान्त में रहने वाली करोड़ों जनता अंग्रेजी समझती है? अंग्रेजी समझने वालों की संख्या बहुत ही कम है। शहरों में रहने वाले कुछ अशिक्षित भी अंग्रेजी समझ लेते हैं, पर गांवों में इसे समझने वाला कोई भी नहीं है। हमें अंग्रेजी को उठाना ही होगा; किन्तु साथ ही हिन्दी के हिमायतियों से भी यह कहूंगा कि हम इसे तुरन्त नहीं हटा सकते। दक्षिण भारतवासियों को तथा अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों को हमें कुछ समय देना ही होगा, ताकि वे हिन्दी से परिचित हो जाये और राष्ट्रभाषा के द्वारा उत्तर भारत तथा पश्चिम भारत से अपना सम्पर्क स्थापित कर सकें।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह है भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में। दस मास पहले जब हम विधान सम्बन्धी सिद्धान्तों के सम्बन्ध में पहली बार विचार करने बैठे थे, तो उस समय हमारी रियासतों की स्थिति कुछ और ही थी। तब से आज बहुत सी बातें बदल गई है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रान्तों तथा रियासतों—दोनों को ही कैसे इकाइयों के रूप में रख सकते हैं? भारतीय रियासतें अभी भी प्रान्तों के स्तर पर नहीं आ पाई हैं। इस सम्बन्ध में एक खास बात मैं यह देखता हूं कि रियासतों के हाईकोर्ट, सर्वोच्च न्यायालय की अधिकार-सीमा के अन्दर नहीं रहेंगे। मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले अध्याय में यह कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को इन अधिकारों के बारे में प्रत्याभूति दी जाती है। भारतीय रियासत में या उनके किसी संघ में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, भारत का नागरिक है और अगर वहां की सरकार उसके मौलिक अधिकारों का अपहरण करे तो वह वहां की उच्च न्यायालय में अपील करें, पर वहां उच्च न्यायालय का ही निर्णय अन्तिम होगा। किन्तु प्रान्तों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। वहां उच्च न्यायालय के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है। इस स्थिति में मैं नहीं समझ पाता कि रियासतों में रहने वाले नागरिक की स्थिति, प्रान्तों में रहने वाले नागरिक की स्थिति के समान क्यों कर हो सकती है?

इसके अतिरिक्त बहुत सी रियासतों में और भी ऐसी बहुत सी बातें वर्तमान हैं और खास राजपूताना और मध्य भारत की रियासतों में। जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के नरेशों के अधीन बहुत से जागीरदार हैं, जो 75 से 90 प्रतिशत भूमिक्षेत्र के स्वामी हैं। वहां एक तरह का कर जागीरदार किसानों से वसूल करते हैं और फिर महाराजा की सरकार को भी उन्हें एक और कर देना पड़ता है। और इसके बाद

[श्री सारंगधर दास]

भी जब अपना माल किसी पड़ौसी रियासत में भेजते हैं, तो वह रियासत भी उन पर आयात कर लेती है। इस सम्बन्ध में मैं एक व्यवहारिक उदाहरण दे रहा हूं। जयपुर में रुई पैदा होती है। पैदा करने वाले दो कर तो जागीरदार के इलाके में चुकाते हैं और जब वह माल बीकानेर जाता है, जहां रुई नहीं होती, तो उस पर एक कर वहां लगाया जाता है। इन सारी बातों को बदलना होगा और जितना ही जल्द हम इन्हें बदल दें, उपज करने वाले, खपाने वाले तथा व्यापार, इन तीनों के लिए उतना ही अच्छा होगा।

एक और बात रह जाती है और यह आखिरी बात है, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं। विभिन्न रियासतों के कबायली लोग प्रान्तों में आ गये हैं और विशेष करके उड़ीसा एवं मध्यप्रान्त में। संघ-सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह इनके जीवनस्तर को ऊंचा उठाये और इन लोगों को सामाजिक और आर्थिक सुविधायें दे। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अर्थ की दृष्टि से ये बहुत ही पिछड़े हुये हैं करीब 20 लाख कबायली उड़ीसा में हैं और 15 लाख मध्य प्रान्त में हैं। हमारे इन पिछड़े हुए नागरिक भाइयों की शीघ्र समुन्नति के लिये यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार इस काम के लिये बड़ी-बड़ी रकमें दे, क्योंकि प्रान्त इतने बड़े भार को सम्भाल नहीं सकते। केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच भी आर्थिक व्यवस्था तय हो, उसमें यह बात अवश्य होनी चाहिये कि जनसंख्या के आधार पर प्रति व्यक्ति के हिसाब से जो भी रकम कबायली लोगों के सम्बन्ध में दी जाये, वह उस रकम से चार या पांच गुना ज्यादा हो, जो गैर-कबायली लोगों के सम्बन्ध में दी जाये। मैं इस बात पर विशेष रूप से जोर देता हूं, क्योंकि अगर हमें इनकी स्थिति को शीघ्र समुन्नत करना है, तो उसके लिये जरूरी है कि जहां भी पिछड़े हुये लोग हैं और जब भी जरूरत हो, अधिक रकम खर्च की जाये।

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मैं डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए दो-एक नम्र निवेदन करना चाहता हूं। मैं सेठ गोविन्ददासजी की तरह इस बात का हामी हूं कि यह अच्छा होता कि हम आरम्भ में ही राष्ट्रगीत, राष्ट्रपताका और राष्ट्र-भाषा का फैसला करते। मैत्रजी ने जो बात कल कही थी, उसके विषय में मैं यह कहना चाहता हूं कि इसमें कोई शक नहीं है कि हम दक्षिण के साथियों से आज यह तवक्को नहीं कर

सकते कि वह एकदम से हिन्दी में ही बोलें और हिन्दी में ही काम चलावें। लेकिन राष्ट्र-भाषा का फैसला पहले होने से एक फायदा यह था और अब भी लाभ है कि लोगों को यह पता लग जायेगा कि देश की कौन सी राष्ट्र-भाषा है और उनको कौन सी राष्ट्र-भाषा सीखने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इसके बाद मैं ताकत के एकीकरण या पृथक्करण के झगड़े में बहुत ज्यादा नहीं जाना चाहता। लेकिन मैं इस सभा का ध्यान एक बात की तरफ दिलाना चाहता हूं। राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने हमेशा हमें यह सिखाया है कि चाहे राजनीतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र, उसके अन्दर पृथक्करण से जो ताकत पैदा होती है, वह ज्यादा मजबूत होती है और मेरे लिए इसके अलावा और भी दूसरे कारण हैं मैं एक देहाती हूं, किसान के घर में पला हूं और परवरिश पाया हूं। कुदरती तौर पर उसका संस्कार मेरे ऊपर है और उसका मोह और उसकी सारी समस्यायें आज मेरे दिमाग में हैं। मैं यह समझता हूं कि इस देश के अन्दर उसके निर्माण करने में जितना बड़ा हक देहातियों का होना चाहिए, उतना उनको मिलना चाहिए और हर एक चीज के अन्दर देहात का प्रभुत्व होना चाहिए।

इसके आगे एक और चीज है, जिसकी तरफ आज सुबह बाबू ठाकुरदास ने ध्यान दिलाया था। वह यह है कि देहाती और शहरी नशिस्तों (स्थानी) की तफरीक मिटा दी जाये। इसमें कोई शक नहीं है और मैं इसको मानता हूं कि अगर हम बहुत आगे की बातें सोचें, तो इसमें देहात का फायदा है, खासतौर पर हिन्दुस्तान जैसे देश के अन्दर, जहां पर कि 7 लाख देहात हैं और चन्द शहर हैं। पर आज जैसे हालात हैं, उनको हम भूल नहीं सकते। हम कितने ही अच्छे ढंग से देहातियों को समझावें और कितने ही अच्छे गीत गाकर उनको हम भुलाना चाहें, वह इस बात को भूल नहीं सकते कि आज देश के अन्दर प्रेस की ताकत और पढ़े-लिखे इंटेलीजैंसियों की जो ताकत देश में प्रभुत्व रखती है, वह शहरों तक ही महदूद है और देहात की आवाज का देश के निर्माण में बहुत थोड़ा हिस्सा है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हम आज जो हालात हैं, उसको भुला नहीं सकते। आज देश में यह जरूरत है कि अभी देहात की जो धारा सभायें नशिस्तें हैं, वह अलहदा रखी जाये, क्योंकि दरअसल अगर संरक्षण मिलना है और मिलना भी चाहिए, तो सिर्फ उन्हीं लोगों को मिलना चाहिए, जो कि पिछड़े हुए हैं। संरक्षण जो कि हमारे ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन में दिया गया है, वह संरक्षण तो अजीब है। हमें एक चीज को याद करना चाहिए, जो हमें राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ने सिखाई है कि हमें अपने ध्येय को हासिल करने में मीन्स का भी हमेशा ध्यान रखना

[चौधरी रणबीर सिंह]

चाहिए। मीन्स का असर ध्येय पर अवश्य पड़ता है। तो जब हम एक सैक्युलर स्टेट बनाना चाहते हैं और निर्धर्मी सरकार बनाने का हमारा ध्येय है, तो फिर उसको हासिल करने के तरीके में अगर हम सीटें माइनारिटीज के लिये या कुछ सम्प्रदायों, रिलीजियन्स के लिये संरक्षित कर दें, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं नहीं समझता कि यह चीज जो मीन्स है, यह कहां तक ठीक है। क्या इन मीन्स का असर ध्येय पर नहीं पड़ेगा? मैं तो समझता हूं कि हमारा जो यह स्वप्न है कि देश के अन्दर एक निर्धर्मी सरकार बनावें, वह स्वप्न ही रह जायेगा, अगर आज भी हमने इस तरह का फैसला किया कि संरक्षण जो मिले, वह धर्म के आधार पर मिले। आज देश की हालत को देखें तो जहां तक कि मुसलमान मजहब के मानने वालों का ताल्लुक है, उनकी तरबियत और शिक्षा और उनकी ताकत का हम सबूत देख चुके हैं। हमने यह देखा कि उन्होंने अपने ऑरगेनाइजेशन की ताकत से और फॉरेन ताकत की मदद से देश के दो हिस्से कराए। दूसरी माइनारिटीज भी, जिनका जिक्र पहले आ चुका है, वह भी कोई कम ताकतवर नहीं हैं। उनको किसी तरह हम पिछड़ी हुई जातियां नहीं कह सकते हैं। हां, यह बात कही जा सकती है कि हरिजन भाई पिछड़े हुए हैं, तालीम के लिहाज से और आर्थिक दशा के हिसाब से वह पिछड़ी हुई जाति कही जा सकती है। लेकिन इस सिलसिले में भी हमको एक बात और सोचने की है, वह यह है कि अगर हम आज उनको हरिजनों के नाम से संरक्षण देते हैं, तो हम उनके हरिजन नाम को पक्का कर देंगे, जो कि हमारा ध्येय नहीं है। हम देश के अन्दर एक क्लासलैस सोसाइटी बनाना चाहते हैं। तो उस क्लासलैस सोसाइटी के अन्दर अगर हम इस तरह सुरक्षित स्थान देंगे, तो वह क्लासलैस सोसाइटी नहीं बन सकेंगी। बल्कि इस तरह से तो हम हरिजन शब्द को पक्का करेंगे। मेरी समझ में उनको सुरक्षित स्थान देने का दूसरा तरीका है, जो बहुत अच्छा है और वह यह है कि पिछड़े हुए जितने आदमी हैं, वह या तो किसान है या वह मजदूर हैं। रशिया में जो मनुष्य हाथ से मेहनत नहीं करते थे और जो दूसरे ढंग से अर्थात् रुपया से रुपया कमाते थे और जिनकी श्रम से कमाई नहीं थी, उनको डीफ्रैंचाइज कर दिया गया था। हम अपने देश में चाहे आज उनको डीफ्रैंचाइज न करें, उनको उनकी आबादी के हिसाब से पूरा अधिकार दे दें। लेकिन जो काम करने वाली जातियां हैं, किसान और मजदूर, उनके

लिए हम संरक्षण रखें और अगर संरक्षण देना है, तो उन्हीं आदमियों को देना है, जो कि किसान है और मजदूर हैं और उन्हीं को यह सही तौर पर दिया जा सकता है।

इसमें एक बात और है। जैसा मैंने पहले कहा था, शायद कोई कह सकता है कि इस तरह से एक और बीमारी पैदा हो जायेगी, वह यह है कि किसान और मजदूर का शब्द भी पक्का घर कर जायेगा। परन्तु मैं समझता हूं कि इससे तो कोई नुकसान नहीं होने वाला है। अगर सारा देश मजदूर बन जाये या किसान बन जाये, तो यह सबसे बेहतर है। अगर हर एक इन्सान श्रम करके खायेगा, तो यह देश के लिए सबसे अच्छी बात होगी और जो देश का आज का मसला अनाज और कपड़े का है, वह भी आसानी से हल हो सकेगा।

इसके बाद मेरा नम्र निवेदन, जो कि एक किसान के नाते हो सकता है, वह गौरक्षा के बारे में है। गौवध के बारे में मैंने और पंडित ठाकुरदास भार्गव जी ने कांग्रेस-पार्टी में एक प्रस्ताव (रिजोल्यूशन) रखा था और उस वक्त वह सर्वसम्मति से माना गया था। लेकिन यह बदकिस्मती की बात है कि उसका जिक्र हमारे कान्स्टीट्यूशन में किसी तरह से भी नहीं आया है। हालांकि हिन्दी के बारे में भी ऐसी ही बात हुई थी। हिन्दी का जो फैसला था, वह पार्टी के अन्दर हो चुका था, लेकिन वह भी इस हाउस के अन्दर नहीं आया था। फिर भी मसौदे में उसका प्रवेश कर दिया गया है। लेकिन गौरक्षा का जो रिजोल्यूशन था, उसका जिक्र नहीं आता। मेरा यह नम्र निवेदन है कि उस रिजोल्यूशन को पूरे तरीके से माना जाये, बल्कि उसका विस्तार इस तरह कर दिया जाये:

''In discharge of the primary duty of the State to provide adequate food, water and clothing to the nationals and improve their standard of living the State shall endeavour:–

(a) as soon as possible to undertake the execution of irrigation and hydro-electric projects by harnessing rivers and construction of dams and adopt means of increasing production of food and fodder.

(b) to preserve, project and improve the useful breeds of cattle and ban the slaughter of useful cattle, specially milch and draught cattle and the young stocks.''

[चौधरी रणबीर सिंह]

अध्यक्ष महोदय, एक और निवेदन मैं आर्थिक व्यवस्था के बारे में करना चाहता हूं। मुझे इसमें तो कोई एतराज नहीं है, बल्कि मुझे बड़ी खुशी है कि सैन्टर बड़ा भारी मजबूत हो, लेकिन एक चीज, जो मैं निवेदन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, वह यह है कि सूबों के फाइनेन्सेज मजबूत किये जायें। आज एक किसान, जिसकी कमाई खून और पसीने की कमाई है, उसकी आमदनी का एक पाई भी ऐसा हिस्सा नहीं है, जिसके ऊपर टैक्स नहीं लगता। एक बीघा भी जमीन अगर वह काश्त करता है, तो इसके ऊपर टैक्स देना पड़ता है। इसके मुकाबले में इस भारत के दूसरे निवासियों को दो हजार तक की आमदनी पर कोई टैक्स नहीं लगता। किसान के साथ यह एक बहुत बड़ा अन्याय है और एक ऐसे देश में, जिसके अन्दर कि किसानों का प्रभुत्व है और जिसमें किसानों की इतनी बड़ी आबादी है, बल्कि यों कहना चाहिए कि जो देश किसानों का ही है, उसके अन्दर उनके साथ यह अन्याय जारी रहेगा, तो यह कैसा मालूम देगा? इसलिए मैं यह चाहता हूं कि सूबे की सरकारें जमीन का जो लगान है, उसको भी इन्कम टैक्स के ढंग से लागू करें। इसके लिए उनके फाइनेन्सेज को मजबूत किया जाये।

दूसरी बात एक पंजाबी होने के नाते में कहना चाहता हूं कि इस देश के आज़ाद होने से पंजाब तकसीम हुआ और पंजाब के तकसीम होने से सूबे का तमाम काम उथल-पुथल हो गया। उसको फिर दुबारा दूसरे सूबों की बराबर लाने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम दस साल तक, जहां तक आर्थिक व्यवस्था का ताल्लुक है, ईस्ट पंजाब के साथ खास रियायत बरती जाये।

***उपाध्यक्षः** कई माननीय सदस्यों की ओर से मुझे इस आशय के पत्र मिले हैं कि सभा स्थगित कर दी जाये, क्योंकि वे लोग प्रदर्शनी देखने जाना चाहते हैं। मैं जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में सभा की क्या राय है।

***माननीय सदस्यगणः** हां, सभा स्थगित की जा सकती है।

***उपाध्यक्षः** मुझे 60 सज्जनों के नाम मिल चुके हैं, जो बोलना चाहते हैं। सभा स्थगित करने का अर्थ यह हुआ कि बहुत कम ही लोग बोल पायेंगे, क्योंकि अब एक ही दिन रह गया है। सभा जैसा चाहती हो वैसा निर्णय करे।

***एक माननीय सदस्यः** साढ़े चार बजे हमें सभा स्थगित कर देनी चाहिए।

***अन्य माननीय सदस्यः** चार बजे हम उठें।

***उपाध्यक्षः** सवा चार तक हम काम जारी रखेंगे।

***श्री आर.आर. दिवाकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, पूर्ववक्ता माननीय सदस्यों ने बहुत सी बातें कह दी हैं और मैं समझता हूं, उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति में मुझे सभा का समय नहीं लेना चाहिए। मैं कुछ ही बातों के सम्बन्ध में बोलूंगा, जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, खास कर जब कि हम अपने देश को एक नया विधान देने जा रहे हैं। एक बात जिसे मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं, वह यह है कि विधान का जो मसौदा हमारे सामने रखा गया है, वह वस्तुतः एक स्मरणीय कृति है और हम सभी इसके लिए मसौदा-समिति को तथा उसके अध्यक्ष को, जो कि सभा में इस विधान को अग्रसर कर रहे हैं, बधाई दे चुके हैं। पर साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि मसौदा-समिति ने न केवल विधान-परिषद् के निर्णयों को ही विधान का रूप दिया है, बल्कि मेरी तुच्छ राय में यह मसौदा-निर्माण के क्षेत्र से कही आगे बढ़ गया है। मैं शायद यह कह सकता हूं कि इसने परिषद् के निर्णयों पर पुनर्विचार किया हैं, उसके कई निर्णयों में उसने परिवर्तन कर दिये हैं, तथा उसके अनेक निर्णयों को नये रूप में रख दिया है। हो सकता है कि वर्तमान परिस्थिति में ऐसा करना परमावश्यक रहा हो, पर विधान-परिषद के हम सदस्यों को, जब कि हम मसौदे पर विचार कर रहे हैं और अपने संशोधन रखने की बात सोच रहे हैं, तो उपरोक्त तथ्य से अवगत हो जाना चाहिए।

दूसरी बात मैं उस जल्दीबाजी के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं, जिससे कि कई लोग विधान सम्बन्धी वाद-विवाद को शीघ्र ही समाप्त कर देना चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि मसौदे पर विचार करने में बहुत शीघ्रता करना लाभप्रद होगा। इसके लिए यथेष्ट समय मिलना चाहिए और जो संशोधन आये हैं, उनमें से कोई भी किसी प्रकार दबाया नहीं जाना चाहिए और न वक्ता को अपर्याप्त समय मिलना चाहिए। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जो वाद-विवाद हों, उनके लिए काफी समय मिलना चाहिए। स्वतंत्र भारत का आविर्भाव हुए आज एक वर्ष से कुछ अधिक हुआ और इस वर्ष हमने बहुत से अनुभव प्राप्त किये हैं अगर और किसी विचार से नहीं, तो इन अनुभवों के विचार से ही मैं समझता हूं, हमें शीघ्रता न करनी चाहिए

[श्री आर.आर. दिवाकर]

और मसौदे की बहुत से प्रावधानों में, जिस रूप में वह हमारे सामने है—परिवर्तन करने के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

वयस्क मताधिकार के प्रश्न को ही लीजिए। हम लोगों में से बहुत से लोग यह सोचने लग गये हैं कि अगर हम बालिग मताधिकार अभी से चालू कर देते हैं, तो क्या विधान-मण्डलों के लिए उस प्रकार के लोग मिल जायेंगे, जो इन सभाओं के लिए अपेक्षित हैं। मैं उन व्यक्तियों में हूं, जो आपको यह सुझाव देंगे कि जहां तक निर्वाचकों का सम्बन्ध है, हम वयस्क मताधिकार को तो जिस रूप में यहां है, रखे; किन्तु परस्पर मिलकर हमें गम्भीरतापूर्वक इस बात पर विचार करना चाहिए कि उम्मीदवारों के लिए हमने जो योग्यताएं रखी है, वह क्या ऐसी है कि उनके आधार पर विधान-मण्डलों में आने वाले व्यक्ति अपने दायित्वों को योग्यतापूर्वक निभा सकेंगे? निश्चय ही पश्चिम की प्रजातंत्रीय प्रणाली का यह अन्धविश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति, जिसे मतदान का अधिकार प्राप्त है, वह विधान-मण्डल का सदस्य चुने जाने के योग्य है। मैं ऐसा नहीं समझता कि प्रजातंत्र के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पाश्चात्य देशों की परम्परा का ही अनुगमन किया जाये। हमें इस महत्त्वपूर्ण बात पर भी सोचना चाहिए कि हमें एक ऐसा विधि-निर्माता चाहिए, जो न केवल प्रतिनिधि मात्र हों, बल्कि ऐसा प्रतिनिधि हो जो कानून बना सकता हो और कुछ दूरदृष्टि रखता हो। हम राष्ट्रीयता की बातें, एकात्मक शासन व्यवस्था की तथा एक शक्ति सम्पन्न केन्द्र की बातें तो कर रहे हैं, पर ये बातें—ये बड़े बड़े शब्द—व्यर्थ हो जायेंगे। यदि हमारे विधान-मण्डलों में ऐसे व्यक्ति न आयें, जो दूरदृष्टि रखते हों और जो बनाये जाने वाले कानून के प्रत्येक पहलू को प्रसंगानुसार इसी दूरदृष्टि से न देख सकते हों। आखिर विधान को शक्ति प्राप्त होती है उन लोगों से, जो इसे कार्यान्वित करते हैं और अगर हम विधान-मण्डलों में ऐसे लोगों को नहीं भेज पाते हैं, जो इस सम्पूर्ण विधान की भावना को उसकी आत्मा को समझ सकते हों, तो मैं समझता हूं कि विधान को उस रूप में कार्यान्वित करना, जिस रूप में कि यह होना चाहिये, बहुत ही कठिन बात होगी। मैं बताना चाहता हूं कि इसी प्रकार की और भी कई बातें हैं, जिन्हें गत वर्ष के अन्दर अपने अनुभवों के आधार पर हम समझ पाये हैं और प्रस्तुत मसौदे पर विचार करने में हमें उनसे लाभ उठाना चाहिये।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है, भाषा के आधार पर प्रान्तों की रचना का प्रश्न तथा राष्ट्रभाषा का प्रश्न, जिनके सम्बन्ध में कि यहां बार-बार वक्तृताएं दी गई हैं। भाषा सम्बन्धी युद्ध तो प्रायः रोज ही यहां लड़ा गया है, या यह कहिए कि लड़ा जा रहा है। प्रकारान्तर से भिन्न-भिन्न रूप में रोज ही यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है। मेरा मत है कि जब हमने यह निर्णय कर लिया है कि हमारी एक अपनी राष्ट्रभाषा होगी, तो फिर हमें उसकी विस्तार की बातों के सम्बन्ध में अब नहीं झगड़ना चाहिए और व्यर्थ ही इस बात पर नहीं जोर देना चाहिए कि हमारा विधान भी उसी भाषा में आना चाहिए। हिन्दी—या हिन्दुस्तानी अथवा आप जिस नाम से भी उसे पुकारें—इस भाषा के प्रति समुचित सम्मान रखते हुए मैं यह कहना चाहूंगा कि इसमें अभी ऐसी अभिव्यक्तियों—शब्दों और पदों—का विकास नहीं हुआ, जिनका कानून और विधान सम्बन्धी कामों में तथा वैधानिक प्रणालियों और भाष्यों में स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग करना आवश्यक होता है। इसलिए उस दिशा में शीघ्रता करने से पूर्व कुछ काल तक प्रतीक्षा करना हमारे लिए परमावश्यक है। मैं यह राय दूंगा कि अंग्रेजी भाषा में लिपिबद्ध विधान हम अभी स्वीकार करें और उसका एक अच्छा हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत करें, किन्तु अभी आगामी कुछ वर्षों तक के लिए अंग्रेजी में लिपिबद्ध विधान को ही प्रमाणिक मानें। मेरी तुच्छ राय तो यही है।

अब, अंग्रेजी भाषा वे प्रति हमारी जो पुरानी घृणा है, या जो अरुचि है, वह 15 अगस्त सन् 1947 ई. से अवश्य ही दूर हो जानी चाहिये। 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पहले तो हम पराधीन होने के नाते इस भाषा का प्रयोग करते थे और इसलिए उसके प्रति हममें विरक्ति का भाव आना ही चाहिए था। किन्तु आज यह बात नहीं है। आज तो हम कुछ काल के लिए इस भाषा का सहारा इसलिए ले रहे हैं कि हमें ही स्वेच्छा से एक भाषा चुननी है; सम्भवतः इसके गुणों के आधार पर अथवा इस कारण से इसे कुछ काल के लिए रख रहे हैं कि हमारे देश में विभिन्न भाषायें बोली जाती हैं।, जिससे भाषा के सम्बन्ध में एक कठिन स्थिति आज उत्पन्न हो गई है। और मेरी समझ से ऐसा ही करना सर्वोत्तम होगा।

इस समस्या के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि हम जो भी भाषा चुनें, वह ऐसी हो जो अधिकाधिक प्रदेशों में बोध-गम्य हो, प्रचलित हो। ऐसा

[श्री आर.आर. दिवाकर]

करने पर ही, आशा है कि हम किसी अच्छे नतीजे पर, सर्वसम्मत परिणाम पर पहुंच सकेंगे।

अब मैं इस प्रश्न की ओर आता हूं कि भाषावार प्रान्तों की रचना हो। इस प्रश्न पर वह आयोग छानबीन कर रहा है, जिसे विधान-परिषद् के प्रधान ने नियुक्त किया है। इसके सम्बन्ध में अभी कुछ कहना असामयिक होगा। वस्तुतः मैं यही चाहता हूं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस सभा-भवन में चर्चा न की गई होती; किन्तु जब इसकी चर्चा यहां हो चुकी है, तो मैं समझता हूं कि इसको किसी तरह टालना या स्थगित करना ठीक न होगा, क्योंकि जब विधान-परिषद् समवेत ही है और हम देश के तथा प्रान्तों के भविष्य पर विचार कर रहे हैं, तो फिर इस प्रश्न को यह कहकर टालने में कोई लाभ नहीं है कि इस पर कोई निश्चय करने में अभी कठिनाइयां हैं। अगर कठिनाइयां हैं, तो इससे क्या? हम लोग यहां इसी लिए समवेत हुए हैं कि इन कठिनाइयों को दूर करें। मैं नहीं मानता कि ये कठिनाइयां ऐसी अजेय हैं कि एक राष्ट्र के रूप में प्रयास करके भी हम इनका समाधान नहीं कर सकते। इससे भी बड़ी कठिनाइयों को हमने दूर किया है और सम्भवतः भविष्य में इससे कहीं बड़ी कठिनाइयां हमें दूर करनी पड़ें। ऐसी कठिनाई के समय यह आवश्यक है कि राष्ट्र के प्रत्येक अंग की, देश के प्रत्येक दल की यह भावना हो, यह विश्वास हो कि भारत के भावी विधान के अन्तर्गत उसका भविष्य सुनिश्चित है, उसकी समुन्नति सुनिश्चित है और उसके उपेक्षित रखे जाने या दबाये जाने का कोई भय नहीं है।

उपाध्यक्ष महोदय, मैं पुनः इस बात पर जोर दूंगा कि विधान के सम्बन्ध में हमें जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिए। उसमें कुछ दिन कम लगें या कुछ दिन ज्यादा लग जायें, इससे कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। मैं आपसे आग्रह करूंगा कि जो अनुभव हमें गत वर्ष प्राप्त हुए हैं, उन पर आप पूरा ध्यान दें, तथा उनको दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत मसौदे की व्यवस्थाओं को रूप दें।

इन कतिपय विचारों को प्रकट करते हुए मसौदे का मैं अभिनन्दन करता हूं और इसके लिए मसौदा-समिति को धन्यवाद देता हूं और साथ ही इसके सुयोग्य सभापति को भी बधाई देता हूं कि उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ उसे सभा के समक्ष उपस्थित किया है।

***श्री हिम्मतसिंह के. माहेश्वरी** (सिक्किम और कूच बिहार): उपाध्यक्ष महोदय, गत दो दिनों में हमने प्रस्तुत मसौदे के सम्बन्ध में कई तीव्र तथा लाभप्रद आलोचनाएं

सुनी हैं। यहां मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि यहां उपस्थित किये हुए सुझावों में से किसी को दुहराऊं या उसकी विस्तृत व्याख्या करूं। मैं विधान के सम्बन्ध में केवल एक बात कहूंगा और आपसे एक अपील करूंगा। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

विधान के सम्बन्ध में जो एक-बात कहना चाहता हूं, वह यह है कि प्रस्तुत विधान ऐसा है कि इससे लोगों को विवादप्रिय-मुकदमेंबाज होने की, न्यायालयों में पहुंचने की अधिक प्रवृत्ति प्राप्त होती है या होगी, पर सत्यपरायण होने की तथा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने की उतनी प्रवृत्ति नहीं प्राप्त होती है, जितनी की वांछनीय है। उपाध्यक्ष महोदय, मैं तो कहूंगा कि प्रस्तुत मसौदा कानूनदाओं के लिए एक वरदान सा है। इससे मुकदमेंबाजी के लिए एक विस्तृत क्षेत्र मिलता है और हमारे दक्ष और चतुर कानून-विशारदों को इससे यथेष्ट काम मिलेगा। उससे जाति को, राष्ट्र को भी सहायता मिल सकेगी, यह बात बहुत ही सन्देहास्पद है।

मसौदे के कतिपय प्रावधानों द्वारा जो लाभ या विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं, वह वास्तविक नहीं हैं; बल्कि ऊपरी हैं और मेरी राय में तो उनमें कुछ तो ऐसी हैं, जिनसे क्षति ही पहुंचेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि इस दोष का कारण क्या है? एक उत्तर रखने का साहस तो मैं करूंगा और वह उत्तर यह है कि जिन सामग्रियों के आधार पर यह मसौदा तैयार किया गया है, वह सबकी सब विदेशी है। इसकी विचार-धारा विदेशी है, इसकी वेशभूषा विदेशी है और सबसे बुरी बात तो यह है कि इसका ढांचा बहुत ही भारी है। इन सारे दोषों को लेकर मैं नहीं समझता कि मसौदा-समिति ने जो चीज़ दी है, उससे अच्छी चीज़ देना उसके लिये सम्भव था। इन दोषों को अब दूर किया जा सकता, है या नहीं, यह कहने में तो मैं असमर्थ हूं; किन्तु इस बात पर मैं जरूर जोर दूंगा कि जब सभा में मसौदे पर विचार हो, उसकी हर धारा की छानबीन हो, तो यह चेष्टा अवश्य की जाये कि इसके अनावश्यक प्रावधान हटा दिये जायें और इन प्रावधानों को भी विधान में न रखा जाये, जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने में काम अपने भावी विधान-मण्डलों पर छोड़ना ही अधिक सुविधाजनक हो।

सभा से मैं जो अपील करना चाहता हूं, वह उस विषय के सम्बन्ध में है, जिसके बारे में आज और कल कई वक्ताओं ने चर्चा की है। विधान-मण्डलों में अल्पसंख्यकों को—मुसलमान, सिख, परिगणित जातियों तथा अन्य वर्गों को सुरक्षित स्थान दिये जायें, इसके सम्बन्ध में मैं आपसे अपील करना चाहता हूं। मेरे मित्र

[श्री हिम्मतसिंह के. माहेश्वरी]

श्री काजी करीमुद्दीन ने कल सुरक्षित स्थान देने का विरोध करके हमें ठीक ही सावधान किया। जिस रियासत से मैं आया हूं, वहां का जो मुझे निजी अनुभव है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि गत 25 या 30 वर्षों से वहां जो पृथक निर्वाचन नहीं स्वीकार किया गया, और मुसलमानों के लिये संरक्षित स्थान नहीं दिये गये, इसका नतीजा रियासत की जनता के लिए बहुत ही अच्छा रहा है। इसके कारण हिन्दू और मुसलमानों के बीच वहां सदा सद्भाव रहा है और 1946-47 के अशान्त काल में भी वहां सदा दोनों जातियों में पूरी मैत्री बनी रही और आपस में सिर फोड़ने की नौबत कहीं नहीं आई। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन दोनों में पारस्परिक सहयोग है और ये मित्र बने रहते हैं। संरक्षित स्थान की व्यवस्था करने से पार्थक्य की मनोवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना निश्चित है। ऐसी व्यवस्था से हमारा असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित करने का जो स्वप्न है, वह कुछ काल तक अपूर्ण ही रह जायेगा। जब तक कि कोई भी सम्प्रदाय संरक्षित स्थानों की मांग करता है और उस मांग की पूर्ति की जाती रहेगी, तब तक मेरी राय में वास्तविक असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित हो नहीं सकता, वह केवल दिवास्वप्न ही रहेगा। इसलिये अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के मित्रों से मैं इस बात का प्रबल आग्रह करूंगा कि स्वेच्छा से वे इस मांग को छोड़ दें, जिससे कि यह विधान एक सच्चे प्रजातंत्रीय पौरुषेय एवं सबल विधान के रूप में बिना किसी दोष के अपने कार्य का श्रीगणेश कर सके। कल हमारे एक सिख बन्धु ने भी, जहां तक कि मैं उन्हें समझ पाया, संरक्षित स्थान देने के विरुद्ध तक तर्क रखा था। निश्चय ही यह एक शुभ लक्षण है। परिगणित जाति वाले इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं, यह जानना अभी बाकी है। श्रीमान्, व्यक्तिगत रूप से सदा मेरा यही मत रहा है कि किसी भी व्यक्ति को परिगणित जाति का ठहराना उस पर एक कलंक डालना है।

(इसी समय घंटी बजी जिसका अर्थ था कि सदस्य का समय समाप्त हो चुका है।)

मैं आपके आदेश के प्रति सिर झुकाता हूं। श्रीमान्, मैं जो कुछ कहना चाहता था, उसे मैं प्रायः कह चुका।

***उपाध्यक्षः** सभा सोमवार, ता. 8 नवम्बर सन् 1948 ई. को प्रातः 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके बाद सभा सोमवार, ता. 8 नवम्बर सन् 1948 ई. को प्रातः 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।